कुरजा की टेर

डॉ. दीपा मार्टिन्स

# कुरजा की टेर

डॉ. दीपा मार्टिन्स

**स्व. दीपा मार्टिन्स**
**(1951–2003)**

जन्म तिथि : 5.4.1951
जन्म स्थान : अजमेर
माता : स्व. श्रीमती लक्ष्मी देवी पंत
पिता : स्व. श्री भगवान वल्लभ पंत
शिक्षा : एम.ए. (अंग्रेजी) 1972
एम.ए. (हिन्दी) 1974
पी.एचडी. (हिन्दी) 1982

**सफरनामा :** अजमेर के श्रमजीवी कॉलेज से 1972–73 में अंग्रेजी प्रवक्ता के रूप में अध्यापन प्रारम्भ किया। 1974–75 में राजकीय महाविद्यालय, नागौर में अंग्रेजी का अध्यापन किया। 1976 से वे लगातार सावित्री कन्या महाविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्रवक्ता के रूप में अपनी सेवाएँ देती रहीं। उन्होंने दो वर्ष तक महाविद्यालय के हिन्दी विभाग की विभागाध्यक्षा का दायित्व भी संभाला।

डॉ. (श्रीमती) दीपा मार्टिन्स शैक्षिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक व सामाजिक क्षेत्रों के विभिन्न आयामों से जुड़ी हुई थीं। वे एक जुझारू समाज सेविका रहीं जिन्होंने न केवल महिलाओं को उत्पीड़न के खिलाफ आवाज़ उठाने के लिए प्रेरित किया वरन् आत्मबोध की परिभाषा सिखा, अपने अस्तित्व को पहचानना भी सिखाया। वे सर्व–धर्म सम्भाव तथा मानवाधिकारों के क्षेत्र में भी पूर्ण रूप से समर्पित रहीं।

# कुरजा की टेर

डॉ. दीपा मार्टिन्स

**प्रकाशक**
समर्पण प्रकाशन
29, एल.आई.सी. कॉलोनी
आनासागर सरक्यूलर रोड
अजमेर–305 006

कॉपीराइट : अंजलि–शेफाली

मूल्य : निःशुल्क वितरण के लिए

प्रथम संस्करण : अप्रेल 2005

मुद्रक
सेंट एन्सैलम्स प्रैस
अजमेर

"KURJA KI TER" BY Dr. DEEPA MARTINS

# दो शब्द

इस पुस्तक में संकलित दीपा मार्टिन्स के लघु निबन्ध पठनीय और महत्वपूर्ण हैं। ये रचनाएं पढ़ने के पश्चात एक सजीव चित्र सामने उपस्थित हो जाता है कि कितने उल्लास, उत्साह, उम्मीद और विश्वास के साथ लेखिका ने अपना जीवन जिया और उसी भाव से उसके संघर्षों में अपनी सार्थक भूमिका का निर्वाह भी किया। इन आलेखों में नारी जीवन की विडम्बनाओं की भी अभिव्यक्ति हुई है, जो कहीं–कहीं काव्य की ऊँचाइयों का भी स्पर्श करती है, उदाहरण के लिए ''बड़ा ट्रंक'' या ''कुरजा की टेर'' जैसी लघु कथाएं पढ़ने पर एक पीड़ा–भरी उदास ध्वनि देर तक अन्दर गूँजती रहती है।

दीपा मार्टिन्स ने नारी जीवन के विविध पक्ष और समस्याओं को प्रस्तुत किया है, और जहाँ पिछड़ापन, अशिक्षा, कुरूपता, विकृति, अन्याय, उत्पीड़न और शोषण है, उनके प्रति अपना तीव्र विरोध ही प्रकट नहीं किया है बल्कि प्रतिकार और उबरने के उपाय भी बताए हैं। उनके सुझाव कोरे उपदेश न होकर निजी सक्रिय अनुभव के व्यावहारिक दृष्टिकोण हैं। सभी को हाशिए से जीवन एवं समाज के केन्द्र में लाने के तर्क और उपाय इसलिए प्रभावशाली हैं कि दीपा मार्टिन्स सभी विषयों पर अत्यन्त संतुलित ढंग से, राष्ट्रीय एकता, शैक्षिक उन्नति, धार्मिक–साम्प्रदायिक सौहार्द, सकारात्मक सोच एवं समानता के आलोक में गम्भीर विचार करती हैं।

यह पुस्तक और इसमें संकलित सभी रचनाएं उपयोगी और मूल्यवान हैं। आशा है, हिन्दी पाठक इसका स्वागत करेंगे।

14/02/2005 इलाहाबाद — अमरकान्त

| क्र.सं. | अनुक्रम | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|
| 1 | कुरजा की टेर | 1 |
| 2 | बड़ा ट्रंक | 5 |
| 3 | सांवरी व्यथा कथा | 7 |
| 4 | बड़े घर की दहलीज | 11 |
| 5 | आइए हमारे कंधे से कंधा मिलाइए | 14 |
| 6 | कितनी सशक्त हुई महिला सशक्तिकरण वर्ष में? | 18 |
| 7 | लिंग आधारित हिंसा (घरेलू हिंसा) | 22 |
| 8 | महिलाओं के शोषण व अधिकारों के लिए संघर्ष | 28 |
| 9 | कहाँ खड़ी है नई सहस्त्राब्दी की भारतीय नारी? | 32 |
| 10 | कानून और भारतीय महिला की स्थिति– घरेलू हिंसा बचाव बिल के परिप्रेक्ष्य में | 36 |
| 11 | नारी आंदोलन और सामाजिक परिवर्तन | 40 |
| 12 | महिला समूह अजमेर – नगर में महिला आंदोलन का एक दशक | 45 |
| 13 | छठे राष्ट्रीय महिला सम्मेलन के मुद्दे और भारतीय नारी की वर्तमान स्थिति | 49 |
| 14 | अस्तित्व संकट से जूझती तीसरी दुनिया की नारी | 55 |
| 15 | क्या औरत ही औरत की दुश्मन है? | 60 |
| 16 | भारत में महिला उत्पीड़न के विविध आयाम | 64 |
| 17 | समाज के विकास में बालिका सक्रिय भागीदार | 67 |
| 18 | असमानता में जन्मी लड़की | 74 |
| 19 | मानवाधिकार चेतना में स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका व योगदान | 78 |
| 20 | कौमी एकता | 84 |
| 21 | राष्ट्रीय एकता और साम्प्रदायिकता | 90 |
| 22 | मृत्यु से अमरत्व की ओर एक गाथा (खजूर रविवार से ईस्टर तक की) | 93 |
| 23 | गुडफ्राइडे | 97 |
| 24 | क्रिस्मस – सहस्त्राब्दी का अंतिम पर्व | 102 |
| 25 | क्रिस्मस – एक पर्व आस्था का | 106 |
| 26 | अनुराग दिवस – वेलेन्टाइन्स डे | 110 |
| 27 | फिर आ गया बालविवाह का मौसम | 113 |
| 28 | मदर्स डे – सहस्त्राब्दी के प्रथम मदर्स डे पर | 117 |
| 29 | मदर्स डे – अभिनन्दन मातृशक्ति का | 120 |
| 30 | मित्रता – जीवन की मुस्कान | 123 |
| 31 | सकारात्मक सोच के सुपरिणाम | 126 |
| 32 | जब आप सैर को जाएं | 129 |

# कुरजा की टेर

सीमा ने अखिल के ऑफिस जाते ही चैन की सांस ली और दरवाज़ा बन्द करके लंगाबंधु का लोकप्रिय राजस्थानी कैसेट लगा दिया। क्षणों में ही लरजते गले की लहरी कमरे के शांत वातावरण में छा गई –कुरजा रे म्हारो भंवर मिला दीजौ। अचानक ही सीमा के पैर थिरकने लगे और वह धीरे–धीरे उस गीत पर नृत्य करने लगी। उसे याद आ गईं मंजू और सुमन, उसके मामा की बेटियां जो किसी भी राजस्थानी नृत्य की धुन शुरू होते ही थिरकना शुरू कर देती थीं और उसे पकड़ कर उठाती थीं : ''सीमा जीजी आप भी आवो ना।'' जैसलमेर की उन खामोश रातों में नृत्य संगीत के स्वर गूंज उठते। कभी घूमर, कभी चिरमी और कभी किसी और तेज गीत के बोल गूंजते रहते और पैर नृत्य की ताल पर थिरकते रहते। बाई, बाऊजी और मामोसा भी आकर बैठ जाते और रात के दो–दो बजे तक ये कार्यक्रम चलता रहता। आज भी सीमा को जब भी होमसिकनेस होती है, वह राजस्थानी गीत का ये कैसेट लगा लेती है और कुछ पलों के लिए अपने आप को भूल जाती है।

आज कितनी दूर आ गई है सीमा उस चिरपरिचत परिवेश से। ये बेदिल–दिल्ली तो किसी की भी नहीं है और अखिल ही ऐसा बदल जाएगा, क्या कभी सीमा ने सपने में भी सोचा था? सीमा का तो आदर्श विवाह हुआ था। सीधी–सादी कोर्ट मैरिज और कुछ भी लेनदेन नहीं। अखिल के पक्के कम्यूनिस्ट विचार तब उसे ही नहीं बाई, बाऊजी और सारे घरवालों को कितने अच्छे लगे थे। इतनी अच्छी नौकरी और ऐसा अच्छा वर अपनी बेटी के लिए पाकर बाई तो पुलकित ही थी। पर ये तो एक मुखौटा था जो अखिल ने ऊपर से ओढ़ रखा था। हर छोटे–बड़े अवसर पर उसने सीमा को नीचा दिखाया था। उसके गले के नीचे ये कभी नहीं उतर पाया था कि सीमा पूँजीपति पिता की बेटी थी। होस्टलों में रहकर उसने स्कूल व कॉलेज की शिक्षा ग्रहण की थी और अभिजात्य

उसे विरासत में मिला था। अखिल का अहम् इतना उग्र था कि वह किसी हद तक सनक से ग्रस्त था। जैसलमेर से लौटने पर कस्टम अधिकारियों की तरह वह उसके सामान की तलाशी लेता था एक भी साड़ी या कुछ भी अतिरिक्त होता तो घर को सिर पर उठा लेता। बाई की ममता भरी सौगात में उसे दान की गंध आती थी। मोहित के लिए दिया गया खिलौना तक उसे ग्राह्य नहीं था।

अपने को प्रगतिशील समझने वाला अखिल बात–बात में अपने पंजाबी कल्चर की श्रेष्ठता की दुहाई देता हुआ, हर घटिया चीज को मारवाड़ी स्टाइल कहकर सीमा को छलनी किया करता था। सीमा कटकर रह जाती थी। पता नहीं किस ललक में आकर लोग प्रेम विवाह कर लेते हैं और फिर बार–बार इतने निचले स्तर पर पहुंच जाते हैं कि अपनी जाति जैसी छोटी–छोटी चीजों की दुहाई देते हैं। जब उनका प्रेम आकाश की ऊँचाइयों पर होता है, तब ये सारे अंतर मिट जाते हैं और बाद में यही छोटी–छोटी बातें मनमुटाव और दूरी का कारण बन जाती हैं। सच, कभी–कभी सीमा का मन होता इस खोखली गृहस्थी का बंधन तोड़कर कहीं दूर भाग जाए।

विवाह से पहले सीमा नौकरी करती थी पर अखिल के अहम् के कारण उसे वो भी छोड़नी पड़ी थी। किसी भी चीज के लिए जब उसे अखिल के आगे हाथ पसारना होता तो वह बहुत परेशान हो जाती। उसकी आवश्यकताओं को अखिल पूंजीवादी सुविधाएँ कहता और उसकी सफाई की आदत को उच्चवर्गीय आडम्बर। कभी–कभी तो सीमा अखिल को खिजाने के लिए जबरदस्ती सफ़ाई करने लगती थी। आठ वर्षों के वैवाहिक जीवन ने सारी मधुरता सोख ली थी और दोनों का रुख आक्रामक ही अधिक रहता था।

सीमा करती भी क्या ? मोहित को आठ बजे स्कूल भेजकर उसके पास करने को था भी क्या ? टी.वी. के सारे सीरियल उसे कंठस्थ हो गए थे और अब बड़े उबाऊ लगने लगे थे ? पढ़े भी कब तक ?



अखिल रात को आठ बजे से पहले घर लौटता ही नहीं था और सीमा के लिए उसके पास समय ही कहाँ था?

अपनी मिट्टी के मोहपाश में बंधी सीमा जब भी आत्मीयता की तलाश में मामीसा के घर चली जाती तो अखिल के व्यंग्यबाण उसे बींधने लगते ''हो आई अपने पीहर ? तृप्ति हो गई ?'' क्या चाहता था अखिल ? सीमा की जिस आइडेन्टिटी पर वह मुग्ध हुआ था उसी को आज किस तरह से वो कुचलता जा रहा था ? यही था वह अखिल जिसके सम्पादकीय लेख नारी मुक्ति का दम भरते थे। उस दिन तो सीमा के होठों पर विद्रूप सी मुस्कान आ गई जब एक समाजसेवी संस्था ने सीमा को नारी स्वातंत्र्य संगोष्ठी में आमंत्रित किया। अखिल की पत्नी होना ही मानो सीमा के स्वतंत्र होने का प्रमाण पत्र था। कौनसी स्वतंत्रता ? कैसी मुक्ति ? एक भव्य आयोजन मात्र ही तो था, जिसमें वाणी के आडम्बर के सिवाय कुछ भी नहीं था।

मोहित भी उसका अपना कहाँ था? केवल रोजमर्रा की जरूरतों के लिए उसे मम्मी चाहिए थी। उसका आदर्श, उसके हीरो तो उसके पापा ही थे। अखिल की हर चेष्टा में सीमा को नीचा दिखाने की जो आदत थी, मोहित भी उसी का अनुसरण किया करता था। पापा ही तो खिलौने लाते थे, पापा ही तो कहानी की किताबें लाते थे, पापा ही तो आइस्क्रीम खिलाते थे। मम्मी तो घर में ही रहती थी।

सीमा ने ऐसे जीवन की कल्पना कहाँ की थी ! कहाँ गई अखिल की बौद्धिक बहसें और बराबरी के दावे ! राजस्थानी अंचल में लम्बा सा घूंघट निकाले हुए ग्रामीण स्त्रियां भी पराधीनता के उस बोध से नहीं भर पाती होंगी, जितनी सीमा। काश, वो उन्मुक्त वातावरण में न पली होती या उसने उच्च शिक्षा न पाई होती। यों तो इस देश की हर नारी उत्पीड़न की शिकार है पर ९८ प्रतिशत तो ये जानती ही नहीं कि उनका शोषण किया जा रहा है। व्यथा की भागीदारी तो बाकी बची दो प्रतिशत के माथे आती है जो जानती हैं कि उनका शोषण हो रहा है। यह दोहरा स्तर सीमा को कब तक मथता जाएगा ।

घर से बाहर सीमा और अखिल प्रगतिशील दंपति माने जाते हैं। लोगों की आँखों में उनके प्रति प्रशंसा मिश्रित ईर्ष्या का भाव भी सीमा कई बार पढ़ चुकी है। पर निजी जीवन में अखिल बाऊजी के घर के उस नौकर से भी बदतर है जो हर रात शराब पीकर अपनी पत्नी को पीटा करता था। ये कटाक्ष, ये व्यंग्यबाण और अलगाव तो उस मार से भी ज्यादा आहत करते हैं। तन से कहीं ज्यादा मार मन पर पड़ा करती है।

लंगाबंधु का दूसरा गीत बजने लगा था–लड़ली लूमा झूमा रे, म्हारो गौरबंद नखरालो। और सीमा का मन भी दूर कहीं खो गया। कैसा रंगीला था राजस्थान! बंजर रेगिस्तानी धरती पर भी कैसा सरस था जीवन! आए दिन कोई न कोई आयोजन घर में हुआ करते थे। मामोसा के आने पर तो घर का माहौल ही बदल जाता। नानीसा के हाथ के पापड़, बड़ी, खीचे भर–भर के आते। बाई दाल–बाटी चूरमा बनवाती और होस्टल से घर आई सीमा और रमा जीजी मगन हो जाते। छुट्टियाँ पलक झपकते ही बीत जातीं।

आज भी सीमा को लगता है रमा जीजी ने अच्छा किया जो विवाह ही नहीं किया। कमाती हैं और मजे में रहती हैं। बाई और बाऊजी को भी संभालती रहती हैं। अखिल तो उसके घरवालों के आने पर ऐसा मुँह बना लेता था कि रमा जीजी तो अब यहां आती ही नहीं। मासीसा के घर ही रुकती हैं और उसे फोन करके वहीं बुला लेती हैं।

कई बार सीमा ने ठंडे दिमाग से सोचा है कि क्या उसे इस माहौल से निष्कृति मिल पाएगी ? नहीं वो अब कुछ नहीं सोचेगी। बस एक–एक करके दिन निकालती जाएगी। ये भी नहीं सोचेगी कि क्या सार्थक है क्या निरर्थक। केवल जीएगी। उसे कुरजा वाला गीत याद आया। विरहिणी कुरजा (एक चिड़िया) से टेर करती है कि मुझे मेरे प्रियतम से मिला दे। क्या पता कुरजा ने विरहिणी के प्रियतम को उसका संदेश दिया हो और विरहिणी को सुख के दिनों के आने की आशा बंधी हो। पर सीमा के मन में तो ऐसी कोई आशा ही नहीं है, ललक भी नहीं है और सम्भावना की कोई परछाई भी नहीं है।



# बड़ा ट्रंक

"मम्मी, मम्मी, गरम कपड़ों को बड़े ट्रंक में रख दूं क्या ? नैपथ्लीन की गोलियाँ ले आई हूँ। वही डालूं या तुम अपना सूखी नीम पत्तियों वाला पुराना राग अलापोगी? शालू चिल्लाकर पूछ रही थी। निशि जैसे सपने से जगी। ये बड़ा ट्रंक कितनी ही यादें समेटे है – कितने ही कड़वे लम्हों का साक्षी रहा है यह।

आज भी क्या भूल पाई है निशि कि अपने प्रति माँजी की अस्वीकृति की मुहर इसी बड़े ट्रंक ने आज से सोलह वर्ष पहले लगाई थी। रवि को अपनी माँ पर ज्यादा ही आस्था थी। "निशि, माँ के लिए उनके बेटे की खुशी से बढ़कर कुछ भी नहीं है। जब मैंने तुम्हें पसंद किया है तो माँ तुम्हें सिर आँखों पर रखेंगी, देखना।" निशि ने शुरू से लक्ष्य किया कि धूमधाम से बेटे का विवाह कर सारे समाज के सामने निशि को पुत्रवधु का स्थान जरूर दिया था माँजी ने, पर एक शालीन उदासीनता सी उसके प्रति हमेशा उनके व्यवहार में रही थी।

विवाह के छः माह बाद जब सर्दी के कपड़े धोकर अंदर रखे जाने लगे तो एक दिन दफ़्तर से आकर निशि ने देखा सारे घर के गर्म कपड़े बड़े ट्रंक की सुरक्षात्मक चारदीवारी में कैद हो गए हैं पर निशि के शॉल, स्वेटर सभी करीने से तहकर उसके कमरे में पलंग पर रख दिए गए हैं। निशि कितना कसमसाई थी यह देखकर कि रवि के सभी गर्म सूट, स्वेटर उसी ट्रंक में रखे जा चुके थे, ससुर और देवर के कपड़े भी वहीं थे केवल निशि के गर्म कपड़े ही मानो उसे मुंह चिढ़ा रहे थे या शायद सांत्वना दे रहे थे – "देखो तुम अकेली ही अस्वीकृत नहीं हो इस घर में।" रवि से कुछ कहने की कोशिश की तो उसने झिड़क दिया – "यार तुम बेकार में ही सेन्टीमेन्टल हो रही हो। तुम औरतों के तो दिमाग ही छोटे होते हैं।"

रवि के सपनों के अनुसार अपने को ढालने में कहां कसर रखी थी निशि ने? आदर्श बहू का तमगा प्राप्त करने के लिए क्या–क्या नहीं त्यागना पड़ा था उसे। पर बाहरवालों के उसकी किसी भी चीज की

प्रशंसा करने पर माँजी कह उठती – "मेरी सरोज की तो उसके ससुराल में बड़ी तारीफ़ है। इतनी पढ़ी लिखी है पर नौकरी नहीं करती। उसके लिए तो घर ही ज्यादा जरूरी है।" निशि अपनी विवाहिता ननद की तारीफ़ों के पुल बंधते देख कुढ़ उठती पर माँजी के मुँह से अपनी प्रशंसा का एक शब्द भी सुनने को तरस जाती। विवाह के दो वर्ष बाद शालू का जन्म हुआ। नर्सिंग होम से ही उसकी सारी ज़िम्मेदारी माँजी ने ले ली। सरोज के बाद चौबीस साल में घर में किसी बच्चे की किलकारियाँ गूंजी थीं। माँजी निहाल हो उठीं। निशि ने सुना था कि माँजी कढ़ाई और बुनाई में बहुत ही निपुण थीं। दर्जनों चादरें, मेज़पोश और तकिए के गिलाफ़ उन्होंने वर्षों मेहनत करके बनाए थे पर वे सारे सरोज के विवाह में दे दिए गए थे। सरोज के पास आज भी एक से एक सुन्दर डिजायनों के स्वेटर थे जो माँजी ने बुने थे। पर निशि ने अपने विवाह के बाद कभी माँजी को कुछ बनाते नहीं देखा था। एक बार रवि ने लाड़ में आकर कहा भी था – "माँ अपनी बहू के लिए भी बना दो एक सुन्दर सा स्वेटर।" तो जिस ठंडी निगाह से माँजी ने उसे देखा था कि निशि कट कर रह गई थी। पर शालू के होते ही माँजी ने न जाने कितने प्यारे–प्यारे फ्रॉक काढ़ दिए और कई स्वेटर बुन डाले। नन्हीं शालू दादी के दुलार में गुड़िया बनी सजी रहती थी। निशि इसी में तृप्त थी। फिर रवि ने कहीं कोई कसर नहीं छोड़ी थी।

सर्दियाँ बीत चली थीं। शालू घुटने चलने लगी थी। उसकी किलकारियाँ सारे घर को गुंजाती थीं। गर्म कपड़े धूप में रखकर अंदर रखे जा रहे थे। एक दिन निशि ने घर आकर देखा कि शालू के सारे गर्म कपड़े बड़े मनोयोग से तहकर माँजी बड़े ट्रंक में रख रही थीं। रवि व घर के अन्य लोगों के कपड़े भी रखे जा चुके थे और अपने कमरे में जाकर उसने पाया कि उसके गर्म कपड़े पूर्ववत ही उसके पलंग पर पड़े थे।

काश! निशि उस ट्रंक को उठाकर घर के बाहर फेंक सकती। आज भी वह बड़ा ट्रंक जैसे बार–बार उसे मुंह चिढ़ाता है। इस घर में हमेशा फॉरेन एलिमेन्ट बने रहना ही शायद निशि की नियति है।



# सांवरी–व्यथा कथा

आज वह चली गई है। अब वह हँसता–मुस्कुराता चेहरा साल–छः महीने में दिखाई देगा, जब वह अपनी माँ के पास आया करेगी। इस समय आगरा फोर्ट के किसी घिचपिच डिब्बे में सिकुड़ी–सिकुड़ाई आँसू से गीली पलकों को मूंदे बैठी होगी। जाने के पहले वह मुझसे मिलने आई थी – ढेर सारा सिन्दूर माथे पर चुपड़ा हुआ था, भड़कीली लाल साड़ी और खूब सारी लाल–हरी चूड़ियाँ। जब वह मुझसे मिलने आई तो लगा रवि बाबू के काबुलीवाला ने जब मिनी को सालों बाद देखा होगा तब उसे कैसा लगा होगा। वही अनुभूति उसके विवाह के मात्र डेढ़ माह बाद मुझे हुई। वो हँसती खिलखिलाती अलमस्त किशोरी अचानक प्रौढ़ा कैसे बन गई? यौवन को क्या लांघ ही बैठी वह? मधुमास बिना आये ही बीत गया क्या?

आज जब यादों की एलबम लेकर बैठती हूँ तो न जाने कितने चित्र सामने आते हैं। आज से पाँच साल पहले जब बूढ़ी आया बहुत बीमार रहने लगी और उसने काम करने में असमर्थता व्यक्त कर दी तो धोबन एक दिन इसे लेकर आई। कुल बारह वर्ष की थी यह – "मेम साब। ये मेरी ननद की छोरी है। सांवरी नाम है इसका। पाँच बेटियां हैं इसके बाप की। इससे छोटी हैं सब। ये काम कर लेगी आपका।" ये काम कर पाएगी? मन में विस्मय भी जगा था क्योंकि ऊंची–ऊंची फ्रॉक में, दो चोटियाँ ऊपर बांधी, एक छोटी सी बच्ची को देखकर यकीन नहीं आ रहा था। पर मेरी नौकरी थी, घर में पाँच साल का मोनू था – और कोई चारा न पाकर मैंने इसे टैम्परेरी अरेंजमेंट समझकर काम चलाने का निर्णय किया था।

आज लगता है क्या संबंध है मेरा इससे – इस जन्म का या पूर्वजन्म का कि ये इतनी आत्मीय लगती है। मिनी के जन्म लेते ही तो मानो सारा मातृत्व इसने धारण कर लिया। उसे नहलाने से लेकर दूध का फीडर बनाकर पिलाने तक, प्रैम में घुमाने से लेकर सुलाने तक सारी

ज़िम्मेदारी इसने अपने ऊपर ले ली। मोनू को पालने में जितनी तकलीफ़ हुई थी, उतना ही अब आराम मिला। पता ही नहीं चला कि मिनी की पहली वर्षगांठ कब आ गई। तब भी कैसी पुलकित हुई थी यह। कभी माथे पर शिकन नहीं आई इसके। यहाँ तक कि इसके लाड़ प्यार के कारण मिनी जब ज़िद करती तो घरवालों के व्यंग्य और कटाक्ष मुझे ऑफिस से आते ही सुनने पड़ते थे – मिनी की माँ तो सांवरी खुद को समझती है। हमें तो इसे हाथ भी नहीं लगाने देती।

पर मिनी सांवरी के सामने तो मुझे भी कुछ नहीं गिनती थी। शाम को बड़ी मुश्किल से छुपकर वो घर जाती थी और जब मिनी ने बोलना सीखा तो रात को नींद में भी उसके मुंह से सांवरी का नाम छांवली–छांवली सुनकर मैं और अमित हँस दिया करते थे।

तीन वर्ष की होने पर जब मिनी नर्सरी में जाने लगी तो वो तैयार होती तो सांवरी से, टिफ़िन लेती तो सांवरी से और मिनी के स्कूल से आने पर सांवरी उसकी बस के आने से आधा घंटे पहले जाकर स्टैण्ड पर खड़ी हो जाती थी। जिस दिन मिनी टिफ़िन आधा खाकर आती या न खाती सांवरी का मुंह लटक जाता और वो दिन भर किचन में खड़ी होकर मिनी की फ़रमाइशें पूरी करती। उसकी मनुहारें करके खिलाने की आदत के कारण मिनी आज भी खाने के मामले में इतनी नखरीली बनी हुई है। मोनू उसे फ़सपॉट ही कहता है। बिना नखरे बनाए वो कुछ नहीं खा पाती और मेरे पास उसके आगे–पीछे घूमने का समय ही नहीं है और सांवरी के जाने के बाद तो उसकी खुराक ने मुझे चिंतित कर दिया है। अमित के कहने पर मैंने ऑफ़िस से एक महीने की छुट्टी ले ली है ताकि मिनी और मोनू इतने उखड़े–उखड़े न रहें।

और बेचारा मोनू! वो भी कितना अकेला पड़ गया है। सांवरी के हाथ की बनी खस्ता पूड़ियां, गर्म–गर्म परांठे उसे रोज मिला करते थे। किचन में बैठकर उससे कहानियाँ सुनते हुए ही वह खाना खाता था। दादी की फटकार या दादाजी की साहबी झड़प – "डाइनिंग टेबल किसलिए है? वहां बैठकर खाना खाओ।" मोनू के कान के आंरपार



हो जाती थी। बाहर से बस्ता फेंकते हुए, जूते उछालते हुए जब वह स्कूल से घर आता था तो भूचाल ही आ जाता था। उस पर आकर वो खाने के लिए रोज नोंकझोंक करता था – सांवरी आज मम्मी कौनसी सब्जी बनाकर गई हैं मेरे लिए? दाल के साथ आलू हैं? भिंडी है? नहीं? जा मैं नहीं खाता। और सांवरी उसे मना बहला कर गर्म–गर्म परांठे अचार के साथ खिलाती थी जो मोनू का मनपसंद भोजन था।

व्रत के दिन जब थकी–माँदी मैं ऑफ़िस से घर आती थी और आते ही मोनू का होमवर्क पूछा करती थी, सांवरी मीठी झिड़की दिया करती थी – मेमसाब पहले चाय पीकर थोड़ा आराम तो कर लीजिए, होमवर्क तो पूरी शाम चलेगा मोनू भैया का। घड़ी देखकर चाय का पानी मेरे लिए चढ़ा देती थी वो। सिर की मालिश से लेकर मेरी हर छोटी बड़ी सुविधा का उसे ख्याल था। पहली बार किसी कामवाली से मुझे इतना सुख मिला था और मेरे लिए सांवरी ने क्या कम सहा था? मेरे पीछे से घर में जैसा व्यवहार उसके साथ किया जाता था क्या मैं उससे अनभिज्ञ थी? मेरे प्रति कोमल भावना रखने के लिए उसे प्रताड़ित किया जाता था और मेरे नौकरी पेशा होने पर मुझपर भी व्यंग्यबाण फेंके जाते थे – 'हां भई, नौकरानी भी जानती है जो पैसे दे वही मालकिन है। तभी तो आगे–पीछे घूमती है। हमारी कौन परवाह करता है।'

राखी पर मिनी से भी पहले मोनू सांवरी से राखी बंधवाया करता था। आज जब वो मिलने आई तो मोनू अंदर जाकर अपने आँसू छिपाने का यत्न करने लगा और मिनी तो उससे चिपट ही गई। मेरा मन भी कितना भर–भर आया। अमित तो मुझे हमेशा ही सैन्टीमेन्टल फूल कहते हैं। पर सांवरी के लिए उनके मन में भी विशेष स्नेह है। मैं इसकी माँ से कई बार इसका विवाह इतनी जल्दी न करने की अपील कर चुकी थी, पर बिरादरी की बातें और अच्छे घर की कमी, पैसे की समस्या – इतनी सारी बातें थीं कि सत्रह वर्ष की हमारी कच्ची कली जैसी सांवरी आगरा में ब्याह दी गई। अच्छा खासा दहेज माँ–बाप ने दिया है पर छोटी जाति में भी दहेज की खासी माँग है – "टी.वी. दिया

पर पलंग नहीं दिया इसका ताना मारते हैं मेमसाब। बापू से बोला है मैंने कैसे भी करो पर इस बार पलंग देकर ही भेजो मुझे। मेरे हाथ का खाना उन लोगों को अच्छा नहीं लगता मेमसाब और तो मुझे कोई फिकर नहीं है पर मोनू भैया, और मिनी के बिना कैसे रहूंगी मैं?" कहते–कहते फफक पड़ी है सांवरी। मिनी कहती है – मम्मी हमारी भी शादी कर दो, हम भी सांवरी के साथ रहेंगे और अपने नन्हे–नन्हे हाथों से सांवरी के आँसू पोंछने लगती है।

आज आधी रात से ऊपर हो गयी है पर उसकी चिन्ता में मैं सो नहीं पा रही हूँ। अमित हमेशा कहते हैं तुम भावुक लोग बहुत इनवॉल्व हो जाते हो और फिर बहुत दुख पाते हो। पर क्या करूँ? अमित का सा नपातुला मन कहाँ से लाऊँ? मैं सांवरी की माँ तो नहीं हूं पर चिन्ता में डूबी सोच रही हूँ – कैसे रहेगी वह? खुश रह पाएगी? तुलसी बहुत याद आ रहे हैं –

कत विधि सरजी नारी जग माहि
पराधीन सपनेहुं सुख नाहीं

मेरी आंखों की नींद उड़ गई है।



# बड़े घर की दहलीज

बंबई के लिये सीटें रिज़र्व करवाते ही मैं बच्चों से बार–बार अपनी सहेली मृणाल की चर्चा करने लगी थी। निधि और निखिल को अपने मामा के घर जाने की ज्यादा उत्सुकता थी। अपने मामा के बच्चों से वे हाल ही एक विवाह में मिल चुके थे और उनके लिए बम्बई यात्रा का अर्थ था फिल्मों की शूटिंग देखना और मामा की नई मारूति कार में बैठकर बम्बई की सैर करना। पर मेरे लिए बंबई का अर्थ था मृणाल – मेरी बहुत प्यारी सखी मृणाल। हमने बी. ए. साथ किया था। साथ पढ़े थे, साथ लड़े थे, घूमे थे और मेरे मन के एक बहुत कोमल से कोने पर आज भी मृणाल का अधिकार था। समय का बीतना मेरे लिए महत्वहीन था क्योंकि मृणाल और मेरे बीच हमेशा पत्र–व्यवहार रहा था। तीन–चार वर्ष के अंतराल में हम मिलते भी रहे थे। उसके विवाह के पश्चात उसके माता–पिता भी अपने बेटे के पास बंबई ही चले गए थे पर आज भी उसके घर के पास जाते ही मेरी कैशोर्यावस्था की यादें ताजा हो जाती थीं। हमने एक युवा क्लब बनाया था। कई बार मेले और प्रतियोगिताएं भी आयोजित की थीं। जब भी मैं मृणाल से मिली मुझे हमेशा लगा उसमें जरा भी परिवर्तन नहीं आया था। अपने वैवाहिक जीवन का हर खट्टा–मीठा अनुभव उसने मेरे साथ बाँटा था।

बंबई पहुँचते ही बच्चे अपना साथ पाकर मगन हो गए पर मैं मृणाल से मिलने को बेताब थी। पिछली बार जब मैं उससे मिली उसके पति ने कोई नया कारोबार डाला था और वह कारोबार की प्रगति से खास खुश नहीं थी। उसके पति के अन्य भाइयों का व्यापार बहुत प्रगति पर था। किन्तु उसके पिछले कुछ पत्रों से ज्ञात हुआ था कि उसके पति का व्यापार भी खासी प्रगति पर था। किन्तु ये तो ऊपरी बातें थी। मृणाल और मैं तो भीतर के किन्हीं तारों से जुड़े हुए थे। मैंने तीन–चार बार उसे फ़ोन किया पर नौकर से पता चला कि मेमसाब बाहर गई हैं। आखिर एक बार फ़ोन लग ही गया। मृणाल ने तुरंत सपरिवार तीन चार दिन

उसके साथ बिताने का निमंत्रण दिया। निखिल और निधि अपने भाइयों के साथ इतने घुलमिल गए थे कि वो मेरे साथ जाने को बिल्कुल तैयार नहीं थे। बड़े प्रलोभन देकर मैंने उन्हें मनाया। हम कार से मृणाल के घर पहुँचे। घंटी दबाते ही बड़े अदब के साथ एक नौकर ने दरवाजा खोला और बिना कुछ बोले वह भीतर की ओर जाकर अदृश्य हो गया। पन्द्रह मिनट तक हम सोफ़े पर बैठकर एक दूसरे को देखते रहे। बच्चे कसमसा रहे थे। पन्द्रह–बीस मिनट बाद मृणाल दिखाई दी। ''अरे आओ बैठो मैं जरा एक जरूरी फ़ोन अटेंड कर रही थी और बेबी जरा सैंडिल वहीं उतार दो, अभी पूरा घर रेनोवेट करवाया है – फ़र्श भी बदला है पूरा, मिट्टी लग गई तो नौकर भी साफ़ करने में तंग करता हैं।'' निधि ने इससे पहले मृणाल को नहीं देखा था। वह सहमी सी अपनी सैंडिल खोलने लगी और निखिल खा जाने वाली नजरों से मुझे घूरता रहा।

अचानक मैंने ध्यान दिया मृणाल का घर बिल्कुल बदल गया था। वॉल पेपर से लेकर नीले टाइल्स वाले बाथरूम तक–हर चीज में पैसों की चमक थी। मृणाल की इकलौती बेटी विदेशी केसियो पर धुनें सुन रही थी और निधि और निखिल को एकदम अजनबी नजरों से देख रही थी। मृणाल अपने नये वीडियो, नये स्टीरियो डैक के दाम और कंपनी के नाम बता रही थी। मेरा मन जाने कैसा–कैसा हो आया। मुझे मजबूरन उसके सोफ़े, डाइनिंग टेबल, कटलरी, विदेशी इलेक्ट्रोनिक सामान की प्रशंसा करनी पड़ी। मुझे याद आने लगा हम कीट्स और शैली की कविताएं साथ पढ़ते थे, शेक्सपीयर के नाटकों पर बहस करते थे और अपनी स्वरचित कविताएँ एक दूसरे को सुनाया करते थे। मित्रमण्डली में हम साहित्यिक और भावात्मक कहलाये जाते थे। क्या यह वही मेरी सखी मृणाल थी, जिसके पास आज बातें करने के लिए शेयर मार्केट के चढ़ते–गिरते भाव और इम्पोर्टेड लिपस्टिक और सैंट के अलावा कोई विषय ही नहीं थे। सिने ब्लिट्ज के अलावा कोई पत्रिका मैंने उसके घर पर नहीं देखी। निधि के हाथ से दूध का कप छलक गया कि मृणाल लगभग अपने नौकर पर चीख पड़ी – "मदन जल्दी पौंछा लगाओ, फ़र्श खराब हो जाएगा।" निधि की शक्ल देखने लायक थी।



शाम को मृणाल के पति लौटे। हमारे आने से उन्होंने अपने रूटीन में कोई परिवर्तन नहीं किया। नीचे मुंह करके पेपर पढ़ते रहे। कुछ फ़ोन किए। एकाध औपचारिक बातें मुझसे कीं और अपने बैडरूम में चले गए। तब तक मृणाल मुझसे अंग्रेजी स्कूलों की महंगी फ़ीस और स्टैण्डर्ड की चर्चा करती रही। दूसरे दिन सुबह उसे क्लब के किसी लंच में जाना था, अतः मैं व बच्चे घूमने निकल गए। निखिल तो टैक्सी में ही फट पड़ा। "मम्मी ये है आपकी फ्रैंड, ये घर है या जेलखाना। हमारा तो दम घुट गया।" निधि रूआंसी होकर बोली, "मम्मी उनकी लड़की कहती है मेरा वीडियो गेम टच मच करो, तुम्हें हैंडल करना नहीं आएगा। बैटरी भी फ़ौरेन से मंगानी पड़ती है। आप अभी सीधे मामा के घर चलो।"

बड़ी मुश्किल से बच्चों को मैं मना सकी थी पर उस घर में सांस मेरी भी रूक रही थी । वैभव की उस चकाचौंध में मेरी मृणाल पता नहीं कहाँ छूट गई थी।

उसी दिन शाम को मैंने भाभी के साथ जरूरी शॉपिंग का बहाना बनाकर मृणाल से विदा ली और मृणाल के और रूकने के आग्रह को मैं सफ़ाई से टाल गई, यह वादा करके कि एकाध दिन में मैं फिर आऊँगी।

मामा के घर आते ही बच्चे चहकने लगे और अपने भाइयों से ऐसे मिले जैसे युगों के बाद मिले हों।

और मैं – मैं मिली कहाँ? मैं तो अपनी प्यारी मृणाल से शायद बिछड़ ही गई। भाभी की आंखों में मूक प्रश्न था – बड़े घर की दहलीज से ही लौट आई ननद रानी?

# "आइए हमारे कंधे से कंधा मिलाइए"

(8 मार्च – महिला दिवस पर विशेष )

नई सहस्त्राब्दी का तीसरा महिला दिवस है। स्वर्गीय शरद जोशी ने हिन्दी दिवस पर अपने एक लेख में व्यंग्य किया था कि : "आज पूरे दिन मैं हिन्दी–हिन्दी करूँगा, हिन्दी में नाश्ता करूँगा, हिन्दी में भोजन करूँगा और बस, हिन्दी दिवस बीतते ही फिर वर्ष के शेष 364 दिन अंग्रेजी का बिगुल बजाता रहूँगा।" ठीक यही स्थिति अब महिला दिवस की होती जा रही है। पूरे वर्ष महिला की उपेक्षा करने वाले अचानक 8 मार्च के पहले सक्रिय होने लगते हैं, मीडिया निहायत फिल्मी स्टाइल में वूमन्स डे की शुभकामनाएँ देता है जो किसी न किसी बहुराष्ट्रीय कंपनी के उत्पाद द्वारा प्रायोजित होती है। एकाध संगोष्ठी हो जाती है जिसमें जोर–शोर से प्रचारित कियां जाता है कि भारत की नारी अब बेचारी नहीं है। वह सबल है, स्वयंसिद्धा है। देखिए तो वह कितने आत्मविश्वास से कैटवॉक करती है, कितनी खूबसूरती से विज्ञापनों की मॉडल बनती है और कितने धड़ल्ले से अपने विचार प्रकट करती है। गत दिनों स्त्री विमर्श पर नगर में हुई एक संगोष्ठी में पति द्वारा कभी–कभी चाय बनाने को महिला सशक्तिकरण का जबरदस्त प्रतीक माना गया और महिलाएँ इस बात पर गद्‌गद् होती रहीं कि उनके 'वो' कितने महिलावादी हैं, कितने सहृदय हैं।

सत्तर के दशक में जब संयुक्त राष्ट्र संघ ने अंतरराष्ट्रीय महिला दशक की घोषणा की थी तब सचमुच लगा था कि महिला की स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित होने वाला है। हमारे देश में भी महिला–आन्दोलन बड़े सार्थक रूप से उभरा था और देश की औरतों ने अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करना प्रारंभ किया था। परिणामस्वरूप दिल्ली में सहेली, एपवा, सबला, जागोरी, काली फॉर वुमन, गुजरात में सहियर, मुम्बई में फ़ोरम अगेन्स्ट ऑप्रेशन ऑफ वुमन, राजस्थान में शक्ति स्तंभ, रूवा, महिला अत्याचार विरोधी जन आन्दोलन,



साथिन यूनियन, महिला समूह, महिला जनाधिकार समिति जैसे कई महिला संगठन देश में खड़े हुए थे। इनके द्वारा अंतरराष्ट्रीय महिला सम्मेलनों में सक्रिय भागीदारी निभाई गई थी और देश में छः राष्ट्रीय महिला सम्मेलन आहूत किए गए – पहला व दूसरा सम्मेलन 1980 व 1985 में मुंबई में, तीसरा सम्मेलन 1988 में पटना में, चौथा 1990 में कालीकट में, पाँचवां 1994 में तिरूपति में व छठा महिला सम्मेलन 1997 में रांची में हुआ। किन्तु उसके बाद अब इन सम्मेलनों की निरंतरता पर प्रश्नचिह्न लग गये हैं। उपभोक्तावाद, वैश्वीकरण, मीडिया के हमले आदि के कारण महिलाओं की समस्याएँ और पीड़ाएँ गौण हो गई हैं। घरेलू हिंसा, बलात्कार, दहेज हत्या और महिला उत्पीड़न के मामले अखबारों की सुर्खियों में सिमट कर रह गए हैं। लोगों की आत्मरति का यह आलम है कि अब उन्होंने प्रतिक्रिया करना भी छोड़ दिया है। हमारे जिले की दो मासूम युवतियों के चेहरे और हाथ पर तेज़ाब फैंकने की घटना को भी जातिगत मुद्‌दा बनाया गया और खूब राजनीति की गई। ऐसी घटनाओं के घटने पर भी समाज द्वारा जो व्यापक विरोध दर्ज होना चाहिए वह नहीं हुआ उलटे महिला व मानव संगठन के प्रतिनिधियों से प्रश्न पूछे जाते हैं कि "आपने इस मामले में क्या किया ?" और यदि इन संगठनों के द्वारा सार्थक प्रयास किए जाते हैं तो उन्हें घरफोडू संगठनों की उपमाओं से नवाज़ा जाता है। संवेदनाएं मर रही हैं, प्रतिक्रियाएं बिखर रही हैं और सारा ध्यान मूल और अहम् मुद्‌दों से हटाया जा रहा है।

कानून का राज तो जंगलराज बनता जा रहा है जहाँ जिसकी लाठी है उसी की भैंस है। महिला पर किया गया गंभीर से गंभीर अपराध जैसे बलात्कार, घरेलू हिंसा और दहेज हत्या तक पर्याप्त साक्ष्य के अभाव में सिद्ध नहीं हो पाता और अपराधी कुछेक दिन जेल की हवा खाकर साफ़ बच निकलता है और नए अपराध करने के लिए तैयार हो जाता है। गाँवों में ससुर बहू का यौन–शोषण कर रहे हैं और एक बहू के विरोध करने पर उससे संबंध तोड़कर दूसरी बहू से नाता जोड़ लिया जाता है और फिर उसका भी यौन–शोषण होने लगता है। साथ के

लोग सबकुछ जानते हुए भी मौन की पट्टी अपने मुँह पर बांध लेते हैं। सम्पन्न पुरुष पत्नी के होते हुए भी अपने पौरुष को सिद्ध करने के लिए अन्य स्त्रियों के साथ विवाहेत्तर सम्बंध बनाते हैं। पत्नी के सामने दो ही विकल्प रह जाते हैं – या तो वह विद्रोह करे और संपत्ति व परिवार से बेदखल हो जाये या चुपचाप इस यातना का गरल पीकर नीलकंठ हो जाए। नौकरीपेशा नारी का अपनी आय पर अधिकार नहीं है और घर और कार्यालय के दोहरे बोझ को वह जीवनपर्यन्त ढोती रहती है। कार्यक्षेत्र में भी उसके साथ दोयम व्यवहार किया जाता है और औरत होने का बराबर अहसास दिलाया जाता है। एक दिलचस्प बात यह है कि उच्च प्रशासनिक अधिकारी यदि महिला है तो कई बार अधीनस्थ कर्मचारी उसे ''सर'' कहकर पुकारते हैं जो इस मानसिकता का परिचायक है कि उच्च पद मात्र पुरूषों के लिए ही आरक्षित हैं। पढ़े लिखे माता–पिता भी पुत्री के विवाह को उसके और अपने जीवन का एकमात्र लक्ष्य बनाकर पढ़ते–पढ़ते ही उसका विवाह कर देते हैं, वह अपने पैरों पर खड़ी नहीं हो पाती और दुर्भाग्य से यदि हमेशा के लिए मायके लौट आती है तो उसके पास कोई विकल्प शेष नहीं रह जाता। जिस तरह से आज हमारे देश में धर्म और राजनीति द्वारा महिलाओं को आतंकित किया जा रहा है यह अत्यंत गंभीर स्थिति है। गत वर्ष गुजरात के दंगों में जिस तरह महिलाओं को साम्प्रदायिक हिंसा का शिकार बनाया गया और काश्मीर में जिस तरह पन्द्रह वर्ष की किशोरियों का विवाह करने और महिलाओं को बुर्कानशीन होने की धमकियाँ दी जा रही हैं उससे प्रश्न उठता है कि :–

" देश में गर औरतें अपमानित हैं नाशाद हैं
दिल पर रखकर हाथ कहिए देश क्या आज़ाद है ? "

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि मात्र कुछ महिलाओं के सशक्तिकृत हो जाने से हम संतुष्ट नहीं हो सकते। बार–बार अरूणा राय, मेधा पाटकर, बछेन्द्री पाल, महाश्वेता देवी, माग्रेट अल्वा, किरन बेदी या कल्पना चावला के उदाहरण देने से ही महिला की स्थिति में



सुधार नहीं हो जाता और महिला सशक्तिकरण का अर्थ पुरूषों का अशक्तिकरण नहीं है। यदि महिला आधी आबादी है तो उसे भी उतने ही सम्मान से जीने का हक है जितना उसके साथी पुरूष को। अतः आइए इस महिला दिवस पर हम संकल्प लें कि अब मात्र कागज़ी घोड़े न दौड़ाकर हम अपने समाज और देश को विकास की ओर अग्रसर करने का बीड़ा उठाएं और इसके लिए महिला को इन्सान मानकर उसे जीने, विकास करने और अपनी मंज़िल खुद तय करने की मुहिम में उसके कंधे से कंधा मिलाएं।

# कितनी सशक्तिकृत हुई महिला सशक्तिकरण वर्ष में?

(8 मार्च – महिला दिवस पर विशेष)

वर्ष 2001 को महिला सशक्तिकरण वर्ष घोषित किया गया था और यह कयास लगाया गया कि इस प्रकार की जोर–शोर की घोषणा से महिला की स्थिति में एकदम से क्रान्तिकारी परिवर्तन आ जायेगा और वह नई शताब्दी के साथ कदमताल मिलाकर चलने लगेगी और नवऊर्जा, नवशक्ति और नवप्रकाश से आवेष्ठित होकर क्षितिज तक पहुँच जाएगी। वर्ष 2001 में कितनी ही संगोष्ठियां, परिसंवाद, चर्चा, बहस, सरकारी और गैरसरकारी कार्यक्रम आयोजित किए गए जिनका रटा–रटाया, पूर्व घोषित विषय था महिला–सशक्तिकरण। किंतु वर्ष बीतते–बीतते घोषणाओं के छल के ऊपर वास्तविकता का सच हावी होने लगा था और आज हम उस वर्ष के बीतने के दो महीने के बाद यह आकलन करने की स्थिति *में हैं कि क्या मात्र किसी वर्ष के पहले कोई उपसर्ग जोड़ देने से* स्थितियों में परिवर्तन आ जाता है सामाजिक, आर्थिक और कानूनी – इन तीन पक्षों की स्थितियों के अध्ययन से ही हम यथार्थ का बोध कर सकते हैं।

देश के सामाजिक ढाँचे ने अभी भी महिला को दोयम दर्जा ही दिया है। आज भी उसे अपने बारे में निर्णय लेने का अधिकार नहीं है। एक पन्द्रह वर्ष की किशोरी अपने बालविवाह को रुकवाने के लिए यदि महिला संगठनों का आश्रय लेती है तो उसे अपने परिवार, जाति और समाज में प्रताड़ना और अकेलेपन का शिकार होना पड़ता है। आगे पढ़कर स्वनिर्भरता का सपना देखने वाली इस किशोरी को नारी शिक्षा को निःशुल्क करने का दम भरने वाली व्यवस्था से भी न्याय नहीं मिलता। पुरुष द्वारा दूसरी स्त्री से रिश्ता रखकर संतान उत्पन्न होने पर भी वैध पत्नी को परिवार वालों द्वारा अपने मुँह को सीने की नेक सलाह दी जाती है ताकि परिवार की बदनामी न हो और घर की समस्या



घर में ही रहे। पति द्वारा दूसरी शादी का सबूत न जुटा पाने के कारण महिला एक ओर अकेलापन, तनाव और आर्थिक अभाव झेलती है तो दूसरी ओर पुरूष अय्याशी कर दूसरी पत्नी को भी कुछ समय बाद प्रताड़ित कर तीसरी पत्नी की तलाश में जुट जाता है। हमारा कानून तो सबूत और गवाह माँगता है और पुरूष अपने धन और प्रतिष्ठा के बल पर झूठे गवाह भी जुटा लेता है जबकि स्त्री ऐसा नहीं कर पाती और बच्चों के लालन–पालन का भार भी उसे ही ढोना पड़ता है। नौकरीपेशा पत्नी को ठिठुराने वाली सर्दी में बर्तन माँजने के लिए गर्म पानी करने पर पति द्वारा निर्ममता से पीटा जाता है और शिकायत करने पर कभी धर्म की, कभी शास्त्रों की, कभी परंपरा की दुहाई देकर उसका मुँह बन्द कर दिया जाता है। ऊँची से ऊँची तनख्वाह पाने वाली पत्नी को अपनी मर्जी से कुछ भी खरीदने का अधिकार नहीं होता। उसकी आय तो परिवार की संपत्ति होती है पर पति की आय के बारे में उसे कुछ भी पूछने का हक नहीं होता। सामाजिक और आर्थिक पहलू जुड़े हुए हैं। *बेटी को पिता की संपत्ति से हिस्सा मिलना उसका वैध अधिकार है* किन्तु सर्वेक्षण करके यह देखना चाहिए कि महिला सशक्तिकरण वर्ष में भी वास्तव में कितनी बेटियों को यह अधिकार मिला है और कितनों को यह हक माँगने पर सामाजिक बहिष्कार का शिकार होना पड़ा है। विवाह की आधी शताब्दी बीत जाने पर भी शराबी पति के द्वारा अपनी पत्नी के हाथ–पैरों की हड्डियां तोड़ दी जाती हैं और परिवार के वयस्क बेटे अपनी माँ पर होने वाले अत्याचार के मूकदर्शक बने रहते हैं। बूढ़ी माँ को घर से निकाल कर संपत्ति से बेदखल कर दिया जाता है और बेटे–बेटियाँ संपन्न पिता का साथ देते हैं और यह सब घटता है महिला सशक्तिकरण वर्ष में।

सबसे अधिक समस्या तब होती है जब औरत अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों के खिलाफ कानून का सहारा लेती है। सबसे पहले तो उसके सामने आवास की समस्या आती है। जिस पति के विरूद्ध उसने क्रूरता, हिंसा या उत्पीड़न का मुकदमा दर्ज करवाया है क्या उसे उसके घर में रहने दिया जायेगा? इन दिनों जो घरेलू हिंसा बिल सुर्खियों में

है उसकी भी सबसे बड़ी खामी यही है कि घरेलू हिंसा की शिकायत करने वाली महिला के लिए क्या उस घर के दरवाजे खुले रह पाएंगे? जब देश की राजधानी में रहने वाली अत्यन्त प्रबुद्ध नौकरीपेशा महिला को इस स्थिति का सामना करना पड़ता है कि क्योंकि उसके पति ने मकान व अन्य संपत्ति को चालाकी से अपने नाम पर करवा रखा है इसलिए मतभेद होने पर वह अपने बच्चों के साथ कहाँ रहे। तो अनपढ़ घरेलू महिला की क्या स्थिति होगी? इसकी हम सहज ही कल्पना कर सकते हैं। कानून भी समर्थ का ही साथ देता प्रतीत होता है। पैसे और शक्ति के बल पर अपराधी पुरुष अपनी अग्रिम जमानत करवा लेते हैं और कई मामलों में तो एफ.आर. लग जाती है यानि वे चलने के पहले ही बन्द हो जाते हैं। धारा 498–ए में भी बहुत कम प्रतिशत महिलाओं को न्याय मिल पाया है। महिला हिंसा पर हाल ही में हुए एक अध्ययन से ज्ञात होता है कि लगभग 50 प्रतिशत मामले पुलिस की शब्दावली में 'अदमबकू झूठ' घोषित कर दिए जाते हैं और अपराधी शीघ्र ही रिहा भी हो जाते हैं। धारा 304–बी दहेज हत्या के मामलों में भी हत्यारा पति पुलिस द्वारा गिरफ्तार होकर भी कई बार न्यायालय से साफ़ बरी हो जाता है। हमारे देश में भ्रष्टाचार हर विभाग में इतना व्याप्त हो गया है कि चाहकर भी पुलिस व न्याय व्यवस्था द्वारा महिला को वांछित न्याय नहीं मिल पाता।

अपने वोट बैंक को समृद्ध करने के लिए देश का हर राजनीतिक दल महिला आरक्षण की बात करता है। पर क्या आज तक कोई भी राजनीतिक दल महिला विधेयक को पारित करवा पाया है? खौफनाक तथ्य तो यह है कि जुनून चाहे सांप्रदायिकता का हो या आर–पार के युद्ध का, उसकी शिकार होती हैं औरतें। यही कारण है कि जम्मू–कश्मीर की महिलाओं में बुरका न पहनने पर मुँह पर तेजाब छिड़कने का आतंक छाया हुआ है तो भिंडरवाला के पंजाब में महिलाओं के साड़ी पहनने पर प्रतिबंध था। जो भी महिलाएँ आज सशक्तिकृत हैं वे अपने अंदर की ताकत के कारण हैं न कि किसी सरकारी प्रायोजित कार्यक्रम के कारण। और जो भी सामाजिक, आर्थिक या कानूनी स्थितियाँ विद्यमान हैं उनसे



यह सिद्ध होता है कि महिला सशक्तिकरण का ढोल पीटने भर से ही महिलाएँ अचानक किसी घोषित वर्ष में सशक्तिकृत नहीं होतीं। यदि महिला को सचमुच ही सशक्तिकृत होना है तो उसे संगठित होना पड़ेगा। अरूणा राय बनकर सूचना के अधिकार की माँग उठानी पड़ेगी। मेधा पाटकर बनकर बड़े बांधों की व्यर्थता पर प्रश्नचिह्न उठाने होंगे। अरून्धती राय बनकर "गॉड ऑफ स्मॉल थिंग्स" जैसे उपन्यासों के माध्यम से आम आदमी की महत्ता प्रतिष्ठित करनी होगी। किरन बेदी बनकर पुलिस व्यवस्था में सुधार लाने की मुहिम छेड़नी होगी तो भंवरी भटेरी बनकर सामाजिक कुप्रथाओं को मिटाने के लिए कमर कसनी पड़ेगी। ये तो हुई उन महिलाओं की बात जो आज विश्व प्रसिद्ध होकर बड़ी लड़ाईयाँ छेड़ रही हैं। अपने सीमित दायरे में भी हिन्दुस्तानी औरत को अपने ऊपर अपना अधिकार कायम करने का तसलीमा नसरीन का आह्वान स्वीकार करना पड़ेगा और परिवार व समाज में अपने लिए जगह बनाने का भागीरथ प्रयास करना होगा। तब किसी सरकार या व्यवस्था को उसे सशक्तिकृत करने के लिए महिला सशक्तिकरण वर्ष की कागजी घोषणा नहीं करनी पड़ेगी।

# लिंग आधारित हिंसा (घरेलू हिंसा)

## महिला दिवस पर विशेष

महिला समूह के अस्तित्व का सीधा संबंध महिला पर घरेलू हिंसा के साथ जुड़ा हुआ है। जनवरी 1989 में जब अजमेर की युवती रीना सिसोदिया को उसके पति व ससुराल वालों ने करंट से जलाकर मार दिया तो अजमेर जिले की लगभग 600 महिलाओं ने रैली निकाली व रीना के घर के सामने प्रदर्शन किया। इसी का परिणाम था कि रीना का पति और ससुर गिरफ्तार हुए। अजमेर में तब तक महिलाओं के लिये कोई स्वैच्छिक संगठन नहीं था। जब इस मुद्दे पर इतनी महिलाएँ एक साथ जुड़ीं तो यह विचार सामने आया कि क्यों न इनकी ताकत को संगठित किया जाये ताकि महिलाएँ एकजुट होकर अत्याचार, अन्याय और घरेलू हिंसा के विरूद्ध आवाज उठा सकें। अजमेर जिले की महिलाओं ने जिनमें शिक्षिकाएँ, गृहणियाँ, विभिन्न दफ्तरों और परियोजनाओं में काम करने वाली औरतें शामिल थीं, मिलकर एक स्वैच्छिक संगठन बनाया जिसे महिला समूह अजमेर नाम दिया गया।

गत 12 वर्षों से महिला समूह में कई प्रकार के लगभग 300 मामले दर्ज हुए हैं। जिनमें से 90 प्रतिशत घरेलू हिंसा से सम्बद्ध हैं। पति व ससुराल पक्ष द्वारा मारपीट, क्रूरता तथा मानसिक यातना देना जैसे मामलों से लेकर दहेज हत्या, जलाकर मारना, दूसरी पत्नी लाकर पहली पत्नी को छोड़ना जैसे अनगिनत मामले महिला समूह में पंजीकृत हुए हैं। इनके अतिरिक्त पिता द्वारा मासूम बच्चियों के साथ यौनिक हिंसा व बलात्कार तथा युवा बेटी के साथ अश्लील हरकतों आदि के भी कई शर्मनाक मामले महिला समूह में दर्ज हुए हैं। इसके अलावा कार्यस्थल पर पुरुष वर्ग द्वारा महिला सहकर्मियों के साथ छेड़छाड़ व अश्लील हरकतें कर उन्हें मानसिक रूप से प्रताड़ित करने के कुछ मामले भी महिला समूह में आए हैं।



महिला समूह ने प्रारम्भ से ही संकटग्रस्त महिलाओं के लिए कार्य किया है अतः इसी प्रकार के मामले समूह उठाता रहा है। पहले मामले रजिस्टर (पंजीकृत) किये जाते हैं। फिर दोनों पक्षों से अलग–अलग व फिर समूह के दफ्तर में आमने–सामने बात करवाने का प्रयत्न किया जाता है ताकि सही तथ्य की जानकारी हो सकें। यदि कोई महिला घरेलू हिंसा की शिकार होकर समूह में आती है तो तुरन्त उसका मैडिकल करवाकर एफ.आई.आर. दर्ज करवायी जाती है। यदि मामला अदालत तक पहुँचता है तो महिला को वकील के पास ले जाया जाता है। जब भी उसकी तारीखें पड़ती हैं या जिस दिन बहस आदि होती है उस दिन समूह के कुछ सदस्य अदालत भी जाते हैं। यदि आवश्यक हुआ तो जिला प्रशासन व पुलिस के उच्च अधिकारियों तक भी पीड़िता की पुकार पहुँचायी जाती है।

हमारा यह अनुभव है कि समय के अंतराल से घरेलू हिंसा के स्वरूप में परिवर्तन नहीं बल्कि वृद्धि हुई है । अंतर केवल इतना हुआ है कि कुछ महिलाएँ महिला समूह जैसी संस्थाओं में एक सपोर्ट स्ट्रक्चर पाकर अपनी आवाज़ उठा रही हैं और घरेलू हिंसा को चुपचाप न सहकर स्वैच्छिक संगठनों के माध्यम से खुलकर संघर्ष कर रही हैं। अजमेर के आसपास के गाँवों से भी महिलाएँ अपने ऊपर हो रहे शोषण व अत्याचार के विरूद्ध एकजुट होकर आवाज बुलन्द कर रही हैं। मीडिया में क्रूरता के अनेक नये उदाहरण देखकर घरेलू हिंसा के नये–नये तरीके ईज़ाद किये जा रहे हैं और कानून की शिथिल और पक्षपातपूर्ण प्रक्रिया के कारण औरत को समुचित न्याय नहीं मिल पा रहा हैं। केसरपुरा गांव की सोहनी बाई, घूघरा की चूंकादेवी, चौसला की बरदी बाई, चिड़िया खेड़ा गांव की पेमी बाई, लाडपुरा की रूक्मा देवी, गोदियाना की निर्मला, गोविन्दगढ़ की आबिदा खातून, नयागांव की नन्दू, पिपलाना की ऐजनदेवी, पर्वतपुरा की शान्ति, श्रीनगर की कमला, निर्मला व सुशीला – ऐसे अनगिनत केस महिला समूह में दर्ज हैं जो ग्रामीण महिलाओं द्वारा उठाये गये हैं। इन सभी मामलों में पीड़िता घरेलू हिंसा की शिकार हुई है। नाता प्रथा के कारण अनेक गाँवों में

पुरुषों ने दो शादियां की हैं और पहली जायज पत्नी को मारपीट कर घर से निकाल दिया है और अपनी संपत्ति से भी बेदखल कर दिया है। कुछ मामलों में बच्चे पति ने रख लिये हैं, कुछ में बच्चे पहली पत्नी के पास होते हैं पर पति उनके भरण–पोषण के लिये कुछ भी आर्थिक सहायता नहीं देता।

जहाँ तक सामाजिक, न्यायिक व प्रशासनिक संस्थाओं का सवाल है कुछ मामलों में तो यदि पदासीन अधिकारी संवेदनशील है तो उसने निजी प्रयासों के द्वारा पीड़ित महिला को न्याय दिलवाने में पहल की है। घूघरा की चूंकादेवी के मामले में जब एस.पी. से महिला संगठनों ने निवेदन किया कि चूंका के विधवा होने पर उसके ससुराल वालों ने उसे मारपीट कर घर व जायदाद से बेदखल कर दिया है और उसका बच्चा भी छीनकर ले गये हैं तो एस.पी. ने पास बैठे लोगों से कहा, देखो भाइयों यह नाइयों का बड़ा मजेदार मामला आया है और फिर चूंका पर ही आक्षेप लगाते हुए कहा – बता तूने अपने पति को क्यों और कैसे मारा। इस मामले में राहत तब मिली जब तत्कालीन संवेदनशील महिला जिला कमिश्नर ने अपने प्रयासों से चूंका के ससुराल से उसके बच्चे को लाकर उसे चूंका को दिलवाया।

जहाँ तक परिवार का प्रश्न है तो जो परिवार ही महिला को प्रताड़ित करता है तो उससे न्याय की आशा कैसे की जाये। परिवार में कहने को तो औरत औरत का शोषण करती है पर वास्तव में पुरुष का ही हाथ हर अहम फैसले के पीछे होता है और महिला अत्याचार का असली सूत्रधार वही होता है। एक युवा लड़की का पिता उसके साथ अश्लील हरकतें करता था। जब हमने उससे मिलकर ऐसा नहीं करने को कहा तो उसने कहा मैं अपनी बेटी के साथ ही तो ऐसा करता हूँ। मैं पत्नी और बेटी में कोई अंतर नहीं मानता। कुछ दिनों बाद वह एम. कॉम. तक शिक्षित लड़की मानसिक रूप से विक्षिप्त हो गयी और अभी भी सामान्य नहीं हुई है। अजमेर के बहुचर्चित वीरूमल कांड के अभियुक्त वीरूमल द्वारा अपनी आठ और चौदह वर्ष की बेटियों के साथ



बलात्कार करने की शिकायत जब इन बच्चियों ने अपने चाचा और दादा से की तो इन्हें यही उत्तर मिला कि तुम्हारा पिता ही तो है, कोई बाहर का आदमी नहीं। जब बाड़ ही खेत को खा रही है तो औरत किससे न्याय की आशा करेगी? एक अन्य केस में एक दादा ने अपनी पोतियों के लिये कहा कि मैंने तीन तो ससुराल में सप्लाई कर दी हैं, दो बाकी हैं। अक्सर लड़की के घरवाले इस प्रयास में रहते हैं कि लड़की पिटकर, शोषित होकर भी ससुराल में ही रहे। बहुत कम परिवारों में लड़की को स्वीकार किया जाता है। एकल औरत की अवधारणा अभी भी परिवार और समाज में स्वीकृत नहीं हुई है।

परिवार परामर्श केन्द्रों में भी केस रजिस्टर किए जाते हैं पर हमारा अनुभव यह है कि परिवार परामर्श केन्द्रों में महिला उत्पीड़न के मामलों को बहुत सरकारी ढंग से उठाया जाता है।

हमारा सबसे ज्यादा खराब अनुभव पुलिस व अदालत के साथ रहा है। एफ.आई.आर. दर्ज करने से लेकर अदालत की प्रक्रियाओं तक में पुरुष प्रधान मानसिकता ही हावी रहती है। एक केस में जब एक पत्नी द्वारा अपने पति के विरूद्ध उनकी छः वर्षीया बच्ची के साथ यौनिक हिंसा करवाने की एफ.आई.आर. दर्ज करने का प्रयास किया गया तो पुलिस यह कहकर टालती रही कि ऐसा तो हो ही नहीं सकता। महिला समूह के सदस्यों के हस्तक्षेप करने पर भी पुलिस यही कहती रही कि पति–पत्नी का आपस में झगड़ा हो गया होगा इसलिए पत्नी पति के विरूद्ध गुस्से में ऐसा आरोप लगा रही है। महिला संगठन के बहुत समय तक बहस करने के बाद ही यह केस रजिस्टर हो पाया। इसी प्रकार महिला थाने में जब एक विधवा अपनी बेटी को पति द्वारा करंट से मारने की शिकायत लेकर गयी तो महिला थाने के पुरुष अधिकारी ने दो सप्ताह तक उसका केस दर्ज करवाने के बजाय उसे रोज सुबह दस बजे से लेकर शाम पांच बजे तक थाने में बिठाये रखा और जब उस विधवा ने शिकायत की तो थानाधिकारी ने उससे कहा – 'तू रांड बेवा है। एक दिन किसी का हाथ तो तुझे पकड़ना ही पड़ेगा, मेरा पकड़ कर देख तेरा काम कितनी जल्दी होता है।'

न्याय व्यवस्था की स्थिति तो और भी बदतर है। उलझाव भरी लंबी न्याय प्रक्रिया के चलते या तो न्याय मिलता ही नहीं या इतनी देरी से मिलता है कि वर्षों प्रतीक्षा में ही बीत जाते हैं। गत वर्ष अजमेर जिले में दो कांड चर्चित रहे। एक में किशनगढ़ की लौरेटा मैसी को उसके पति व घरवालों ने क्रूरतापूर्वक जलाकर मार दिया और दूसरे में लाडपुरा गाँव की चौदह वर्षीय किशोरी रमीला को उसके गाँव के एक युवक ने अपनी वासना का शिकार बनाकर गर्भवती बना दिया और उसने एक बच्चे को जन्म दिया। पर दोनों ही मामलों में न्यायालय ने अभियुक्तों को पर्याप्त साक्ष्य के अभाव में बरी कर दिया। लौरेटा के केस में न्यायालय ने लौरेटा के आत्महत्या पत्र को सही मानते हुए इस केस को हत्या का न मानकर आत्महत्या का माना। हमारा प्रश्न यह है कि यदि पीड़िता ने आत्महत्या भी की तो उसे इसके लिये किसने प्रेरित किया। रमीला के केस में क्या जीता–जागता बच्चा पर्याप्त सबूत नहीं है? एक जाने–माने डॉक्टर ने महिला मरीज के साथ अश्लील हरकत की पर पहली ही पेशी पर उसके खिलाफ किया गया दावा खारिज हो गया। न्यायालय में भी पैसे और ताकत का खेल ही चलता है। जो महिलाएँ पारिवारिक न्यायालय में जाती है उनका अनुभव बताता है कि पारिवारिक न्यायालय के जज से लेकर क्लर्क तक सभी पुरुष प्रधान मानसिकता के शिकार हैं और कई बार धारा नौ (दांपत्य का पुनर्स्थापन) के तहत औरत को ज़बरदस्ती उसी परिवार में वापिस भेजने को मजबूर किया जाता है जहाँ की हिंसा और उत्पीड़न से तंग होकर उसने न्यायालय की शरण ली थी। मुस्लिम महिलाओं की स्थिति तो और भी बदतर है। तलाक का तमाचा मारकर उन्हें हर अधिकार से वंचित कर दिया जाता है।

राज्य महिला आयोग के गठन से कुछ आशा बंधी है पर इसके ढ़ाँचे में परिवर्तन किया जाना चाहिए। स्वैच्छिक संगठनों के साथ इसका तालमेल बिठाना आवश्यक है।

महिला पर घरेलू हिंसा के आंकड़ों में निरंतर वृद्धि होती जा रही है। इक्कीसवीं सदी में भी चौदहवीं शताब्दी की मानसिकता से हमारा



समाज ग्रस्त है और राजनीतिक दल फिर से औरत को हाशिए पर ढकेल रहे हैं। ऐसे में जरूरत है संगठित होकर अपनी आवाज बुलन्द करनें की। हम भी इन्सान हैं, हमें सम्मान से जीने का उतना ही अधिकार है जितना पुरुषों को। जब तक हम अपने ऊपर अपना अधिकार कायम करना नहीं सीखेंगी तब तक इसी प्रकार हम घरेलू हिंसा और उत्पीड़न की शिकार होती रहेंगी।

अतः आज आवश्यकता है तस्लीमा नसरीन के इस आह्वान को स्वीकार कर अपनी ताकत और मजबूती पर भरोसा करने की :–

औरत ही कर सकती है औरत को आजाद
कायदे कानूनों पर
सभ्य पैट्रोल छिड़क
जला देगी औरत ही
सती व्रत कथा और नष्ट बहिश्त

# महिलाओं के शोषण व अधिकारों के लिए संघर्ष

## महिला दिवस पर विशेष

विश्व स्तर पर महिलाओं के शोषण व अधिकारों के लिए संघर्ष का परचम उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में अमेरिका की कामगार मजदूरिनों ने फहराया था जब उन्होंने काम के घंटे सोलह से घटाकर दस करने की जायज माँग को लेकर सड़कों पर प्रदर्शन किया। इसके बाद बीसवीं शताब्दी में प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान रूसी महिलाओं ने प्रदर्शन किया व धीरे–धीरे विश्व के कोने–कोने में नारी शोषण के खिलाफ मोर्चाबंदी होने लगी।

भारतीय संदर्भों में महिला आंदोलन स्वतंत्र देश के बदलाव की उपज नहीं था बल्कि गुलाम देश ने अपनी स्वतंत्रता के लिए औरत की ज़रूरत महसूस की। 1785 में देवी चौधरानी ने सेनानायक बनकर यह दिखा दिया था कि अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने में भारतीय नारी भी कम नहीं है। 1824 में रानी चेलम्मा ने ईस्ट इंडिया कंपनी के एकछत्र अधिकार को चुनौती दी तो 1857 में रानी लक्ष्मीबाई व बेगम हजरत महल ने सेना की बागडोर संभाल कर स्वतंत्रता के अधिकार के लिए हुए संघर्ष में महती भूमिका अपनाई। 1917 में श्रीमती एनीबीसेन्ट की अध्यक्षता में भारतीय महिला समिति का गठन हुआ। भारतीय नारी ने संगठित होकर 1927 में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन का गठन किया, इस संगठन ने 1931 में अखिल एशियाई महिला सम्मेलन का आयोजन किया। स्वतंत्रता के बाद संविधान ने तो महिलाओं को बराबरी के अधिकार दिये पर कड़वा सच यह था कि भारतीय महिला को स्वतंत्रता के बाद हाशिए पर ढकेल दिया गया।

इसी कसमसाहट के कारण और अपने ऊपर परिवार, समाज व देश द्वारा हो रहे अलग–अलग स्तर के शोषण के कारण भारतीय महिला सक्रिय हुई और उसने संगठित होकर अपने अधिकारों के लिए संघर्ष



करना प्रारम्भ कर दिया। नारी संघर्ष का प्रभाव पूरे विश्व में परिलक्षित होने लगा। भारत में जब 1972 में महाराष्ट्र श्रमिक संगठन ने एक आदिवासी महिला के साथ हुए सामूहिक बलात्कार के खिलाफ आवाज उठाई तो वियतनाम में 1974 को महिलाओं ने साम्राज्यवाद के खिलाफ प्रदर्शन किया। 1979 को ईरानी स्त्री विमुक्ति का संघर्ष प्रारम्भ हुआ जिसमें पचास हजार ईरानी औरतों ने तेहरान में अयातुल्ला खुमैनी द्वारा जबरदस्ती लादी गई पर्दाप्रथा के खिलाफ प्रदर्शन किया। भारत में कई महिला संगठनों ने सक्रिय होकर महिला शोषण के विरुद्ध एवं अधिकारों के लिए जेहाद छेड़ दिया। शेतकारी संगठन, सहेली, सबला,शक्तिशालिनी, फोरम अगेन्स्ट ऑप्रेशन ऑफ वीमेन, साथिन यूनियन, जागोरी, सहियर, काली फॉर वीमेन, आवाज निस्वाँ आदि कई संगठनों ने अधिकारों के लिए आवाज उठाना शुरू कर दिया। राजस्थान में भी इस चेतना का प्रभाव हुआ और रूवा, मावजा (महिला अत्याचार विरोधी जन संगठन) आस्था, एपवा, प्रयास, साथिन यूनियन आदि कई महिला संगठनों ने अपने हक की लड़ाई प्रारम्भ कर दी।

जनवरी 1989 में अजमेर के बहुचर्चित रीना सिसोदिया दहेज हत्याकाण्ड के विरोध में ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों की लगभग 650 महिलाओं ने रैली निकाली व विरोध प्रदर्शन किया। अब यह लगने लगा कि अजमेर में भी एक सक्रिय महिला संगठन की आवश्यकता है जो महिला उत्पीड़न के खिलाफ कार्य करे। परिणाम स्वरूप महिला समूह अजमेर का गठन हुआ जो गत ग्यारह वर्षों से अजमेर जिले की महिलाओं के लिए कार्य कर रहा है और देश के अन्य महिला संगठनों से जुड़कर महिला मुद्दों पर एकजुट हो रहा है ताकि महिलाएँ शोषण के विरूद्ध आवाज उठाकर अपने अधिकारों की रक्षा कर सकें।

आज हम नई शताब्दी व सहस्त्राब्दी में प्रवेश कर चुके हैं जिसके स्वागत में मीडिया ने गत एक वर्ष से शोर मचा रखा है। युक्तामुखी के विश्व सुन्दरी बनने को हम भारतीय महिला की उपलब्धि

मानने पर फूले नहीं समा रहे हैं पर आज आवश्यक है कि प्रचारतंत्र के पीछे छिपे सच का चेहरा पहचानने की।

अपने ही परिवेश में यदि हम देखें तो इस इक्कीसवीं सदी के प्रारम्भ होते ही अत्याचारों व शोषण का तांडव मानो नई बैटरी चार्ज कर पुनः प्रारम्भ हो गया। विवाहिताएँ जला कर मारी जा रही हैं, किशोरियाँ सामूहिक बलात्कार की शिकार होकर असमय ही मातृत्व धारण कर रही हैं। प्रशासन और व्यवस्था निष्क्रिय हो चुके हैं और न्याय देवता ने तो आँखों पर पट्टी बाँध रखी है। पारिवारिक न्यायालय में शीघ्र न्याय की आशा लेकर जाने वाली महिला अधिकार प्राप्त करने के बजाय लम्बी; पेचीदी प्रक्रिया के कारण उपजी हताशा भोग रही है। घर हो या बाहर, पुरुष सत्तात्मकता का दानव उसकी अस्मिता को प्रतिपल रौंदे जा रहा है। इस अशोक वन में कोई त्रिजटा भी नहीं है जो उसकी रक्षा के लिए प्रस्तुत हो। महिला बिल को चुनावी मुद्दा बनाकर वोट बैंक समृद्ध किये जा रहे हैं, किन्तु कोई भी दल वास्तव में महिला को आरक्षण नहीं देना चाहता। पंचायत चुनावों में चुनी महिला सरपंचों की नियति तो सबसे अधिक विडम्बनापूर्ण है। वे पुरुष वर्ग के हाथ की कठपुतलियाँ हैं और जहाँ भी विकास की धारा में योगदान देने का प्रयास करती हैं, वहीं अविश्वास प्रस्ताव लाकर उन्हें हटाया जा रहा है। कायड, गगवाना व रसूलपुरा सहित अनेक पंचायतों में किस प्रकार महिला सरपंचों को अपदस्थ किया गया, यह किसी से छिपा नहीं है।

किन्तु ऐसा नहीं है कि भारत की महिला ने अपने शोषण के खिलाफ व अधिकारों के लिए छेड़ी गयी लड़ाई में हार मान ली है। महिला आन्दोलन ने नारी को शक्तिसंपन्न बनाया है और वो अपने शोषण के विरोध में संगठित होकर आवाज़ उठा रही है। राजस्थान के बहुचर्चित भंवरी भटेरी सामूहिक बलात्कार कांड या अजमेर के अश्लील छायाचित्र कांड को भले ही न्यायिक दृष्टि से संपूर्ण सफलता न मिली हो , शाहबानो को वर्ग विशेष के वोटों की राजनीति ने न्याय नहीं दिया हो किन्तु भारतीय महिला अपने अधिकारों के प्रति आज अपने से कहीं



अधिक जागृत व सचेत है। अनपढ़ व घर की चारदीवारी में रहने वाली महिला भी आज महिला संगठनों से जुड़कर शोषण के खिलाफ संगठित हो रही है। आज ऐसे संवेदनशील पुरुष भी हैं जो महिला अधिकार के लिए प्रयासरत हैं और इस लड़ाई में महिलाओं के कांधे से कांधा मिलाकर चल रहे हैं।

अतः यह आशा की जा रही है कि गत सदी में की गयी यह घोषणा कि अगली सदी नारी की होगी– कागजी नहीं वरन् सत्य सिद्ध होगी और तस्लीमा नसरीन का यह आह्वान – यह दुनिया तुम्हारी है नारी, जैसे चाहो जियो। ये दुनिया अगर एक नदी है तो इसमें उतरकर चूर करो लहरों का दर्प। कायम करो अपने पर अपना अधिकार– नारी में नई ऊर्जा व ऊष्मा का संचार करेगा और शोषण व उत्पीड़न के विरूद्ध उसकी लड़ाई जारी रहेगी ताकि उसके अधिकारों की पूर्ण रक्षा हो सके।

# कहाँ खड़ी है नई सहस्त्राब्दी की भारतीय नारी ?

## महिला दिवस पर विशेष

नई सहस्त्राब्दी के प्रारंभ होने के कई माह पूर्व ही संचार माध्यमों द्वारा जोर–शोर से विविध विषयों पर चर्चा की जा रही थी। ऐसा समाँ बाँधा जा रहा था मानो 31 दिसंबर की मध्यरात्रि को कुछ ऐसा घटेगा कि सारी कायनात ही बदल जाएगी। नारी की स्थिति को लेकर भी कुछ ऐसी अटकलें लगाई जा रही थीं मानो इक्कीसवीं सदी की नारी अचानक अपना कलेवर बदलकर पूर्णतः परिमार्जित आधुनिका के रूप में परिवर्तित हो जाएगी। युक्ता मुखी के विश्व–सुन्दरी का खिताब पाने से बीतती सदी ने भारतीय नारी के मोह, रूप के जादू के संपूर्ण संसार में तहलका मचाने का खूब जोर–शोर से प्रचार किया और यह आशा बंधाई कि अगली सदी नारी की ही होगी।

किन्तु इस सारे शोर–शराबे के स्वर अब धीरे–धीरे मन्द होते जा रहे हैं ओर दो माह बीतते–बीतते यह अहसास और भी पुख्ता हो चला है कि भारतीय नारी आज जिस जमीन पर खड़ी है, उसमें सितारे नहीं उग आए हैं वरन् और भी चुभने वाले काँटे भरे पड़े हैं। यह जमीन उबड़–खाबड़ भी है, रपटीली भी। नारी मानो आज बालू की सतह पर खड़ी है, जिस पर जहाँ भी वह पांव रखती है, धँसती चली जाती है। मीडिया की जादूभरी स्वप्निल सरज़मीं से वह कोसों दूर है और स्तम्भित है प्रचार और यथार्थ के बीच के सच का फासला देखकर।

मुझे अजमेर मूल की प्रतिभाशालिनी लेखिका अनुराधा मारवा राय के सद्य प्रकाशित अंग्रेजी उपन्यास "आइडल लव" की भयावह परिकल्पना साकार सी होती प्रतीत होती है जिसमें उन्होंने इक्कीसवीं सदी की भारतीय नारी के पूर्णतः कट्टरपंथी ताकतों द्वारा कुचले जाने का संकेत दिया है। जहां देश में ''अर्द्धांगिनी संस्थाएँ'' खुल जाती हैं, जिसमें नारी को मात्र स्त्री प्रबोधिनी के आदर्श पर ढालने की शिक्षा दी जाती है और नारी स्वातंत्र्य को पूर्णतः कुचल दिया जाता है।



एक दशक से भी अधिक समय से संकटग्रस्त महिलाओं के लिए काम करने का मेरा अनुभव मुझे जब इस सहस्राब्दी के कुछ केस स्टडीज की वास्तविकता का बोध कराते हैं तो मैं सिहर उठती हूं चौदह वर्षीय बालिका गाँव के संपन्न वर्ग के युवक द्वारा चाकू की नोंक पर बलात्कार के परिणामस्वरूप माँ बन जाती है तो न्यायालय युवक को प्रथम दृष्ट्या दोषी न मानकर आनन–फानन में बरी करने की त्वरा दिखाता है। महिला व मानव अधिकार संगठनों द्वारा न्याय की गुहार करने पर पर्याप्त सबूत के अभाव का हवाला दिया जाता है। मानो जीता जागता शिशु पर्याप्त सबूत नहीं है और किशोर के यौन उत्पीड़न व मातृत्व की कीमत लगाई जाती है मात्र पाँच हजार रूपए। मानो इतनी राशि उस मासूम के लालन–पालन के लिए पर्याप्त है, जिसकी अबोध माँ ने अभी यौवन की दहलीज पर पाँव भी नहीं रखा है। अबोध बालिकाएँ अपने ही सरंक्षकों द्वारा यौनिक हिंसा की रोज शिकार हो रही हैं। पर एक दमघोंटू चुप्पी परिवेश में छायी हुई है। सब कुछ जानते बूझते भी पूरे परिवार व समाज ने अपना मुँह सी लिया है क्योंकि ऐसी स्थिति में न्याय तो मिलता ही नहीं और न्यायालय में इस तरह से घटनाओं की पर्तें उघाड़ी जाती हैं कि पीड़िता बार–बार उसी घटना की भयावह स्मृति की अदृश्य चींटियों को अपने बदन पर रेंगती हुई पाती है, जिसके विरोध में उसने कानून की शरण ली थी। यह सब आज इक्कीसवीं सदी व तीसरी सहस्राब्दी में यथावत घट रहा है मानों कोई सीरियल गतांक से आगे चल रहा हो और पुराने संदर्भों को बार–बार दोहरा रहा हो।

एक युवती जलाकर मार दी जाती है और उसके पति या ससुराल वालों में इतनी संवेदना भी नहीं होती कि वे मृत शरीर को जनता के तमाशे के लिए निर्वस्त्र प्रदर्शन के लिए न रख दें। जो बहू परिवार की लज्जा होती है, उसके मरने पर भी उसके मृत शरीर को ऐसे पटक दिया जाता है मानों वह कोई घृणित पशु हो। आसपास के लोग मूक दर्शक बने रहते हैं। जब तक आग उनके घर को ही न जला दे, वे प्रतिक्रिया भी नहीं करते हैं और धरती अब भी घूम रही है।

प्रजातंत्र में नागरिक अधिकारों के रक्षक होते हैं – प्रशासन और व्यवस्था के प्रतिनिधि– जो सिद्धान्ततः कटिबद्ध होते हैं, नागरिकों के हितों की रक्षा करने के लिए। चिकित्सा के क्षेत्र में भी एक डॉक्टर को डॉक्टर बनने पर शपथ दिलाई जाती है कि वह अपने पेशे का दुरूपयोग नहीं करेगा किन्तु पक्षपातपूर्ण मेडिकल रिपोर्ट किसी भी मज़बूत केस को कितना कमज़ोर बना सकती है, यह किसी से छिपा नहीं है।

अन्याय के खिलाफ आज भी जब महिला सबसे पहली प्रक्रिया के रूप में थाने में प्रथम सूचना रिपोर्ट एफ. आई. आर. दर्ज कराने जाती है तो वहीं से लिंगभेद व पुरुष सत्तात्मकता की मानसिकता के कारण उसके साथ जैसा व्यवहार होता है, उससे उसकी हिम्मत प्रारंभ में ही पस्त होने लगती है। भ्रष्टाचार प्लेग की भाँति हर विभाग में ऐसे फैल गया है कि दोषी से अधिक यंत्रणा का शिकार उस महिला को होना पड़ता है जिसपर अत्याचार किया गया हो।

जब केस पुलिस थाने से न्यायालय में आता है तब तक तो उसमें इतने छिद्र हो जाते हैं कि अभियुक्त साफ बच निकलता हैं। भंवरी भटेरी की एक दशक पुरानी कानूनी लड़ाई को न्यायालय द्वारा यह कहकर विराम दे दिया जाता हैं कि गाँव की ऊँची जाति के लोग नीची जाति की महिला के साथ बलात्कार कर ही नहीं सकते। यह वही देश है जहाँ रोज़ समाचार पत्र दलित महिलाओं के उच्च वर्ग द्वारा यौन शोषण के समाचारों से भरे रहते हैं। इस सहस्त्राब्दी में भी अभियुक्त को गिरफ्तार करने के समाचार से उपजी आशा उसके शीघ्र ही जमानत पर रिहा होने की खबर पढ़कर मायूसी में बदल जाती है और आज भी लगता है इस जंगलराज में क्या कभी नारी कानून की पेचीदी, उलझाव भरी प्रक्रिया में न्याय पा सकेगी ? पारिवारिक अदालतें भी गत डेढ़ दशक से बहुत प्रयास करने पर भी नारी को समुचित न्याय नहीं दिला पा रही हैं। कई धाराओं में आज भी अनेक छिद्र हैं। अभी भी हम उस देश के वासी हैं जिस देश में बार–बार हर दल महिला आरक्षण को अपने चुनावी मुद्दे में स्थान देकर वोट बटोरने का महायज्ञ करता है और सत्तारूढ़ होते ही 'किंतु–परंतु' जैसे जुमलों द्वारा अपनी असमर्थता



व्यक्त कर इसका दोष विरोधी दल को दे देता है और सच पूछें तो पंचायत चुनावों में जहां महिलाएँ चुनी भी गयी हैं, वहां उन्हें कितने अधिकार प्राप्त हैं और वहाँ भी असली सरपंच कौन होता है, यह सर्वविदित है। कितनी ही सक्रिय व कर्मठ महिला सरपंचों के विरूद्ध अविश्वास का प्रस्ताव लाकर उन्हें कैसे खदेड़ा जाता है, यह पिछली ही नहीं इस सहस्राब्दी का भी कड़वा सच है।

हाँ एक जगह है, जहाँ सहस्त्राब्दी की नारी अपनी पूर्ण गरिमा के साथ विराजमान है, वह है परिचर्चा, परिसंवाद, संगोष्ठी एवं वाद–विवाद के मंचों पर। गत शती से इस शती तक इतनी वाग्धाराएँ भारतीय नारी से संबंधित विविध आयामों पर प्रवाहित हो चुकी हैं कि लगता है मानों बाढ़ आ गयी हो। महिला मुद्दों पर चर्चा व गोष्ठियाँ करना आज फैशन सा हो गया है।

तो इस सहस्त्राब्दी की नारी क्या करे ? आज इतना अवश्य हुआ है कि बीसवीं शताब्दी के अंत तक आते–आते जिस प्रकार देश–विदेश में महिला आन्दोलन पनपा है, उससे भारतीय नारी को भ्रम के छलावे व यथार्थ के सच का अंतर समझ में आने लगा है। ग्रामीण क्षेत्र में भी साथिन की सरकारी परिकल्पना से आगे बढ़कर वह सशक्तीकरण की ओर उन्मुख हुई है। संगठन ने उसे नई ऊर्जा व शक्ति दी है। आज आवश्यकता है अपने ऊपर अपना अधिकार कायम करने की और अपने धरातल को पहचानने की।

ऐसा नहीं है कि भारतीय नारी सर्वत्र ही पदाक्रांत हुई है। नई सहस्त्राब्दी में अरूणा राय, मेधा पाटकर, अरून्धती राय, महाश्वेता देवी जैसे अनेक हस्ताक्षर हैं जो कहीं सूचना के अधिकार की माँग कर, कहीं बड़े बांधों की आड़ में वास्तविक विकास का विरोध कर व कहीं कलम की ताकत से अपनी अस्मिता व अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे हैं। अतः इस सहस्त्राब्दी की नारी ने गत सहस्त्राब्दी से जो ज़ेहाद छेड़ा है, उसका परिणाम अवश्य ही सार्थक होगा और उसके लिए भी किसी दिनकर को कहना पड़ेगा – ये दीप अमा के बुझते हैं– सारा आकाश तुम्हारा है।

# कानून और भारतीय महिला की स्थिति – घरेलू हिंसा बचाव बिल के परिप्रेक्ष्य में

## (8 मार्च : महिला दिवस पर विशेष )

गत दो वर्षों से भारत के महिला संगठनों, न्यायविदों, पत्रकारों एवं बुद्धिजीवियों के बीच गर्मागर्म चर्चा, अटकलों और बहस का मुद्दा बना हुआ है घरेलू हिंसा से बचाव सम्बंधी बिल संख्या 133, वर्ष 2001 जो अधिनियम बनने की प्रकिया में है। यह तो सरकारी तंत्र ने भी स्वीकार किया है कि महिला पर घरेलू हिंसा समाज और देश के विकास में बाधक है अतः इसके निराकरण के लिये यह बिल प्रस्तुत किया गया है।

इस बिल के मुख्य घटक निम्न हैं :–

पीड़िता की यहाँ व्यापक परिभाषा दी गयी है। पीड़िता का अर्थ होगा कोई भी महिला जो प्रतिवादी (उत्पीड़क पुरुष) की रिश्तेदार हो और उसके द्वारा घरेलू हिंसा की शिकार हुई हो। घरेलू हिंसा को मात्र शारीरिक ही नहीं माना गया है। ऐसा क्रूर आचरण जो महिला को किसी भी प्रकार की पीड़ा पहुँचाए या उसे जबरदस्ती अनैतिक जीवन जीने को बाध्य करे, वह भी घरेलू हिंसा की परिधि में आएगा। अर्थात् यदि महिला को मानसिक यातना भी दी जाएगी तो वह भी घरेलू हिंसा मानी जाएगी।

इस बिल के अधिनियम बनने पर राज्य सरकार द्वारा प्रत्येक जिले में एक सुरक्षा अधिकारी की नियुक्ति की जाएगी। सुरक्षा अधिकारी का कर्तव्य होगा कि वह (1) सुरक्षा के लिए आवेदन करने में, (2) अपने क्षेत्र में प्रदान की जाने वाली सेवाओं का उपयोग करने में, (3) कानूनी सहायता प्राप्त करवाने में और (4) पीड़िता या उसकी ओर से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा शिकायत करने पर इस समस्या का सौहार्दपूर्ण निपटारा करने में पीड़िता की मदद करे। सुरक्षा अधिकारी को दीवानी न्यायालय के बराबर अधिकार प्राप्त होंगे।



इस अधिनियम की यह विशेषता होगी कि अपने ऊपर हो रही घरेलू हिंसा की सूचना स्वयं पीड़िता ही दे, यह आवश्यक नहीं होगा। कोई भी अन्य व्यक्ति यह सूचना सुरक्षा अधिकारी को दे सकेगा। सूचना देने वाले व्यक्ति पर किसी भी प्रकार की आँच नहीं आएगी।

कोई भी पीड़िता महिला सुरक्षा आदेश (प्रौटेक्शन ऑर्डर) प्राप्त कर सकेगी। सुरक्षा आदेश प्राप्त करने की प्रक्रिया बहुत सरल होगी। घरेलू हिंसा की शिकार कोई भी महिला या उसकी ओर से कोई भी मजिस्ट्रेट को एक अर्जी लगाकर धारा 14 के अंतर्गत राहत की माँग कर सकेगा। अर्जी मिलने के 15 दिन के भीतर मजिस्ट्रेट सुनवाई की पहली तारीख तय करेगा जिसकी सूचना वह सुरक्षा अधिकारी को एक विज्ञप्ति के द्वारा प्रदान करेगा। सुनवाई की अगली तारीख 2 महीने के भीतर होगी। मजिस्ट्रेट पीड़िता एवं प्रतिवादी को सलाह देने के लिए कल्याण कार्य से जुड़े लोगों या महिला–संगठनों की सहायता ले सकेगा। इस कार्य में महिलाओं को प्राथमिकता देने की अनुशंसा की गयी है। न्यायालय की समस्त कार्यवाही गोपनीय रखी जाएगी।

इस बिल के अनुसार यदि मजिस्ट्रेट को यह विश्वास हो जाता है कि महिला पर घरेलू हिंसा हो रही है तो वह प्रतिवादी को यह आदेश दे सकता है कि पीड़िता को तुरन्त आर्थिक सहायता प्रदान करे। सुरक्षा आदेश में मजिस्ट्रेट सहायता राशि निर्धारित कर सकता है और कितने दिन के भीतर वह राशि पीड़िता को मिलनी चाहिए यह भी तय कर सकता है। यदि मजिस्ट्रेट को लगता है कि प्रतिवादी जानबूझ कर नोटिस नहीं ले रहा है तो वह एकतरफा निर्णय ले सकता है। यदि तुरन्त हस्तक्षेप की आवश्यकता हो तो मजिस्ट्रेट एक अंतरिम सुरक्षा आदेश जारी कर सकता है जिसमें प्रतिवादी को घरेलू हिंसा न करने के निर्देश दिए जा सकते हैं।

धारा 11 के अनुसार मजिस्ट्रेट को अर्जी देने के तीन महीने के भीतर मामले का निपटारा कर देना चाहिए। सुरक्षा आदेश की अधिकतम अवधि दो वर्ष होगी। प्रतिवादी द्वारा सुरक्षा आदेश का

उल्लंघन करने पर उसे दंडित किया जाएगा। दंड एक वर्ष का कारावास, आर्थिक जुर्माना या दोनों हो सकता है। इस बिल में यह भी स्पष्ट किया गया है कि सुरक्षा अधिकारी को जनसेवक होना चाहिए और यदि सुरक्षा अधिकारी अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता तो उसे भी जेल भेजा जा सकता है या उस पर जुर्माना किया जा सकता है।

ऊपर–ऊपर से देखने पर यह बिल बहुत प्रभावी लगता है। इस प्रकार के बिल का उद्देश्य बताते हुए यह उल्लेख किया गया है कि घरेलू हिंसा मानवाधिकार का मुद्दा है। वियना समझौते (1994) और बीजिंग समझौते (1995) के अनुसार सीडा पर संयुक्त राष्ट्र संघ की समिति (1989) ने यह अनुशंसा की थी कि राज्य के दलों को महिला हिंसा के विरूद्ध कदम उठाने चाहिए खासकर, पारिवारिक हिंसा के विरूद्ध।

महिला पर की गयी क्रूरता भारतीय दंड संहिता की धारा 498–ए के अंतर्गत दंडनीय अपराध है। यह फौजदारी के अंतर्गत आता है। नागरिक कानून में इस ओर ध्यान नहीं दिया गया है। आप घरेलू हिंसा से पीड़ित महिला को नागरिक कानून के अंतर्गत राहत देने के उद्देश्य से इस नियम को प्रस्तावित किया गया है। सरसरी दृष्टि से इस बिल को देखने पर यह आश्वस्ति हो जाती है कि अब भारतीय महिलाएँ बहुत सुरक्षित हो जाएंगी और उन पर होने वाली घरेलू हिंसा एकदम समाप्त नहीं तो बहुत सीमित तो हो ही जाएगी। इस प्रकार का इन्द्रधनुषी आकर्षण सा इस प्रस्तावित बिल की ओर होने लगता है और इक्कीसवीं सदी की भारतीय नारी भी हिंसामुक्त समाज में स्वप्निल संसार के हिंडोले में झूलने लगती है। किन्तु यदि ध्यान से इस बिल की समीक्षा की जाए तो यह मादक स्वप्न कटु यथार्थ में परिणत हो जाता है। इस बिल में घरेलू हिंसा के साथ आदतन शब्द जुड़ा है अर्थात् वही महिला घरेलू हिंसा की शिकार मानी जाएगी जिस पर इस प्रकार की हिंसा लंबे समय से हो रही है। इस बिल में यह भी कहा गया है कि यदि प्रतिवादी स्वयं या स्वयं की संपत्ति की रक्षा के लिए घरेलू



हिंसा का सहारा लेता है तो इसे घरेलू हिंसा नहीं माना जाएगा। इस प्रकार से तो हर प्रतिवादी यही सिद्ध करेगा कि पीड़िता द्वारा उसे या उसकी संपत्ति को नुकसान पहुँचाया जा रहा था इसलिए उसे हिंसा करने पर बाध्य होना पड़ा। इसी प्रकार इस बिल में यह भी कहा गया है कि मजिस्ट्रेट द्वारा घरेलू हिंसा घटने का विश्वास होने पर ही कार्यवाही की जाएगी। हम यह जानते हैं कि मजिस्ट्रेट भी पुरुष होगा या पुरुष प्रधान मानसिकता का शिकार होगा। तो क्या वह पीड़िता महिला के प्रति संवेदनशील होगा? यही बात सुरक्षा अधिकारी पर भी लागू होती है। सौहार्दपूर्ण निपटारे के नाम पर महिला को जबरदस्ती समझौता करने पर बाध्य नहीं किया जाएगा, क्या इस तथ्य से इंकार किया जा सकता है?

धारा 498–ए का अनुभव भी महिलाओं के संदर्भ में बहुत आशावादिता का संचार करने वाला नहीं है। 498–ए फौजदारी मामला है, जब उसी में अप्रत्याशित देरी होती है तो बिल संख्या 133 का हश्र क्या होगा? 498–ए में यह दुखद पहलू है कि महिला परामर्शदाताओं और न्यायाधीशों द्वारा अक्सर पीड़िता को प्रतिवादी से बहुत कम पैसे लेकर समझौता करने पर बाध्य किया जाता है।

कुल मिलाकर यह तथ्य सामने आता है कि केवल कानून बनाने से महिलाओं की स्थिति में सुधार की आशा करना कोरी मृगमरीचिका है। छेड़छाड़, बलात्कार आदि सभी अपराधों के लिए अलग–अलग कानून हैं किंतु मात्र इनसे महिला–उत्पीड़न कम नहीं हुआ है। आवश्यकता है महिला–सशक्तिकरण को कानून की परिधि से निकालकर वास्तविक धरातल में ले जाने और कवच की भांति धारण करने की। अब समय आ गया है कि देवियों को मात्र शक्तिपीठ में स्थापित कर घर की नारी को पैरों की जूती समझनेवाले समाज को यह बता दिया जाए कि इक्कीसवीं सदी की भारतीय नारी न घर में हिंसा को सहेगी न बाहर।

# नारी आंदोलन और सामाजिक परिवर्तन

## (महिला दिवस पर विशेष )

समाज के निर्माण में जितनी भूमिका पुरुष की है उतनी ही नारी की भी क्योंकि समाज शब्द का अर्थ ही उस संरचना से है जिसका एक छोर यदि पुरुष है तो दूसरा नारी। अतः जिस तरह समाज के निर्माण में नारी का महत्व है उसी तरह सामाजिक परिवर्तन में भी नारी की अहम् भूमिका है। पौराणिक कथाओं में एवं मिथकों में चाहे वे हमारे देश के हों या विदेश के – सृष्टि के उद्भव के साथ ही नारी के दाय का उल्लेख आता है। एक ओर विधाता को भी बिना नारी के अपूर्ण मानकर 'सः एकाकी न रमते' की चर्चा हमारे देश में होती रही है तो दूसरी ओर बाइबिल में आदम की रचना के बाद उसके जीवन में शून्यता की मनःस्थिति के कारण हव्वा की रचना का उल्लेख आता है, जो स्पष्ट करता है कि नारी की सामाजिक क्षेत्र में भूमिका असंदिग्ध है। आदिमानव समाज से आज तक विश्व–समाज परिवर्तनों के कई दौरों से गुजरा है और प्रत्येक दौर में नारी की विशिष्ट भूमिका रही है। मैं इस संदर्भ में महिला आंदोलनों का विशेष रूप से उल्लेख करना चाहूंगी जिनके कारण नारी ने पहले स्वयं को परिवर्तित किया है व परिणामस्वरूप सामाजिक परिवेश में परिवर्तन हुआ है।

विश्व–स्तर पर आकलन करने पर हम पाते हैं कि वर्तमान समय में परिवर्तन का क्रम उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में रेखांकित होने लगा था। अमेरिका में शोषण और दमनचक्र को सहते–सहते कपड़ा मिल की मजदूरिनों ने अन्ततः 8 मार्च 1857 में विद्रोह का बिगुल बजाकर परिवर्तन की दिशा में तब पहला कदम रखा जब वे इस माँग को लेकर सड़कों पर निकल आईं कि उनके प्रतिदिन के कार्य के घंटों को सोलह से घटाकर दस किया जाए। परिवर्तन की वह लहर अन्य देशों में भी पहुँची और 1910 में स्थापित अंतरराष्ट्रीय समाजवादी स्त्री कांग्रेस के सामने रूसी क्रान्तिकारिणी क्लारा जेटकिन ने यह प्रस्ताव



रखा कि विश्वशान्ति हमेशा हमें प्रिय रही है। युद्ध की कलह, भाषणबाजी और जनता के बेसमय जोश से हमने धोखा खाने से इंकार किया है। पुरुष मारकाट करें तो हमें शान्ति के लिए संघर्ष करना चाहिए। यदि वे खामोश हैं तो हमारी समाजवादी बहनें युद्ध के विरूद्ध आवाज़ उठाएंगी।

इस घोषणा से यह स्पष्ट हो गया था कि विश्व की नारी ने स्वतंत्र चिन्तन कर सामाजिक परिवर्तन की दिशा में प्रयास करना प्रारंभ कर दिया है। मार्च 1915 में ओस्लो में स्त्रियों ने विश्व युद्ध के विरूद्ध प्रदर्शन किया और युद्धविहीन समाज की अपनी आकांक्षा को बलवती किया। 8 मार्च 1917 के दिन जब मास्को में महिलाओं ने रोटी की माँग को लेकर मोर्चा निकाला तो यही वह लहर बनी जिसने रूसी क्रान्ति को गति व शक्ति प्रदान कर एक बेहतर शोषणविहीन समाज के निर्माण की दिशा में प्रयास किया। मार्च 1937 में स्पेन की महिलाओं ने फ्रैंको की तानाशाही के खिलाफ प्रदर्शन किया तो 1943 में इटली की महिलाओं ने मुसोलिनी के फासिस्टवाद के विरूद्ध प्रदर्शन किया। 1974 में वियतनाम में महिलाओं ने युद्ध के विरूद्ध प्रदर्शन किया तो 1979 में 50,000 ईरानी स्त्रियों ने मिलकर तेहरान की सड़कों पर निकलकर खुमैनी की धर्मान्धता को ललकारा।

ये सभी घटनाएं सामाजिक परिवर्तन की दिशा में एक महत्वपूर्ण आयाम थीं। स्त्रियों के इस विस्फोट ने पूरे समाज को नवीन रूप से चिन्तन करने की प्रेरणा दी व नए प्रतिमान गढ़े जाने लगे। संयुक्त राष्ट्रसंघ ने 1975 में मैक्सिको सिटी और 1980 में कोपेनहेगेन में विश्व महिला सम्मेलन आयोजित किए और 1976–1985 को अंतरराष्ट्रीय महिला दशक : समानता, विकास और शान्ति घोषित किया तो 20 वीं शताब्दी के आठवें दशक में अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस व महिला दशक की घोषणा की जिनसे न केवल विश्व स्तर पर बल्कि अपने देश के स्तर पर भी महिला आन्दोलन को सार्थक दिशा मिली।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान सामाजिक व राजनीतिक परिवर्तन का जो क्रम प्रारंभ हुआ उसमें महिलाओं ने सक्रिय भागीदारी

निभाई थी। आज भी बेगम हजरत महल, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई सरोजिनी नायडू, विजयलक्ष्मी पंडित आदि का उल्लेख उन जुझारू महिलाओं के रूप में किया जाता है, जिन्होंने विदेशी अत्याचारों के विरूद्ध जेहाद छेड़ा था। किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात जब पुनः महिलाओं को हाशिये पर ढकेलने का प्रयास किया जाने लगा तो उन्होंने इसका विरोध किया और उन सभी मुद्दों पर असंतोष प्रगट किया जिनसे उनके अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न लग रहा था।

फलतः भारत में स्वायत्त महिला संगठनों द्वारा अब तक छः राष्ट्रीय सम्मेलनों का आयोजन किया जा चुका है। इन सम्मेलनों में पहला व दूसरा सम्मेलन 1980 व 1985 में बम्बई में आयोजित हुए थे। यदि हम इन सम्मेलनों में उठने वाले विषयों को लक्षित करें तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि व्यापक स्तर पर देश में जो परिवर्तन हो रहे थे, उनकी माँग नारी द्वारा ही उठायी जा रही थी। मुम्बई में 1980 में आयोजित राष्ट्रीय महिला सम्मेलन के विचारणीय मुद्दे थे बलात्कार, पारिवारिक हिंसा, वेश्यावृत्ति, संचार माध्यम में लैंगिक भेदभाव, महिलाएँ व काम तथा कानूनी संशोधन। ये सभी विषय देश के सामाजिक परिवर्तन की दिशा में सोचने को बाध्य कर रहे थे। परिणामस्वरूप 1984 में पारिवारिक न्यायालयों की स्थापना हुई, जिसकी माँग महिला संगठनों द्वारा ही उठायी गई थी। ये पारिवारिक न्यायालय नारी को शीघ्र न्याय दिलाने एवं पारिवारिक विवादों की पेचीदी प्रक्रिया से मुक्त कराने की दृष्टि से स्थापित हुए थे। सामाजिक परिवर्तन की दिशा में यह एक महत्वपूर्ण कदम था क्योंकि कई महिलाओं को इन न्यायालयों के माध्यम से शीघ्र न्याय मिलने की आशा बंधी और उनके जीवन में आशा का संचार हुआ।

जब 1985 में बम्बई में दूसरा राष्ट्रीय महिला सम्मेलन हुआ, उस समय चर्चा के जो प्रमुख विषय थे, वे स्पष्ट रूप से भारतीय नारी द्वारा अपने जीवन से जुड़ी समस्याओं के प्रति चिन्ता के परिचायक थे। इस सम्मेलन में महिला संगठनों का ढाँचा, काम करने की प्रक्रिया और उसमें समस्याएँ व महिला आंदोलन का राजसत्ता से रिश्ता आदि विषयों



पर व्यापक चर्चा हुई। इन ठोस चर्चाओं के फलस्वरूप राजनीति में महिलाओं को भागीदारी देने जैसे बिन्दु देश में उठने लगे और पंचायती राज्य व्यवस्था का माहौल बनने लगा। बढ़ते हुए महिला संगठनों की उपस्थिति दर्ज की गई, जिससे स्पष्ट होने लगा कि सामाजिक परिवर्तन की मात्र व्यवस्था करने वाली गत दशक की भारतीय नारी अब इस संघर्ष में कूद पड़ी है और अपने लिए नए क्षितिज तलाश रही है।

तीसरा राष्ट्रीय सम्मेलन 1988 में पटना में हुआ जिसमें पहली बार सैंकड़ों की संख्या में आदिवासी महिलाओं ने भाग लेकर यह सिद्ध कर दिया कि समाज के आमूलचूल परिवर्तन की तड़प केवल शहरी नारी में ही नहीं है। इस सम्मेलन के समय तक देश 1984 के सांप्रदायिक दंगों को भोग चुका था और अकाल की मार ने भी कई राज्यों को त्रस्त कर रखा था। अतः इस सम्मेलन में चर्चा का विषय थे – सांप्रदायिकता, सूखा, पर्यावरण, स्वास्थ्य, जमीन की मिल्कियत पर महिलाओं का हक। ये सारे विषय राष्ट्र की चहुँमुखी प्रगति की दिशा में एक ओर महिला का रूझान व दूसरी ओर देश की विषम स्थितियों के प्रति उसकी चिन्ता को प्रगट करते हैं। इन चिन्ताओं एवं प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप ही देश की स्थितियों के प्रति जन–आक्रोश उभरा एवं बेहतर समाज की निर्मिति के लिए ज़मीन तैयार होने लगी।

चौथा राष्ट्रीय महिला सम्मेलन 1990 में कालीकट में व पाँचवां सम्मेलन 1994 में तिरूपति में हुआ। छठा राष्ट्रीय महिला सम्मेलन दिसंबर 97 में रांची में आयोजित हुआ। इन सभी में विचारणीय विषय हर बार समय की माँग के अनुसार बदलते गए। उदाहरणस्वरूप पाँचवें व छठे सम्मेलन में महिला की अपने शरीर पर अधिकार की माँग पुरजोर स्वर में उठी क्योंकि तब तक हमारे देश में महिला उत्पीड़न की अनगिनत घटनाएँ – दहेज हत्याएँ, बलात्कार, रूपकंवर को सती किया जाना आदि घट चुकी थीं। फलस्वरूप भारत में महिला आयोग की स्थापना हुई। गत दस वर्षों से महिलाओं के एक स्वैच्छिक संगठन में कार्य करने के कारण मैं यह उल्लेख करना चाहूंगी कि महिला आंदोलन

ने महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन अवश्य किया है। अपने ऊपर होने वाले उत्पीड़नों को खामोशी से न सहकर नारी अब संगठित होकर उनका सामना कर रही है। अपने व्यक्तिगत मुद्दों पर ही नहीं बल्कि नारी आज समाज व देश की ज्वलन्त समस्याओं पर भी सरोकार प्रकट कर रही है। कहीं वह किरण बेदी के रूप में पुलिस जैसे महकमें में भी पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर तिहाड़ जैसी जेल को सुधार आश्रम में परिवर्तित कर रही है तो कहीं मेधा पाटकर के रूप में पर्यावरण पर प्रश्न उठा रही है तो कहीं अरूणा राय के माध्यम से सूचना के अधिकार की माँग कर रही है और कहीं नलिनी सिंह के रूप में सार्थक पत्रकारिता कर देश की समस्याओं की तह में जा रही है। ये सभी उदाहरण अन्ततः समाज की स्थिति में परिवर्तन के ही द्योतक हैं।

विश्व व भारत के समाज में पूर्णतः परिवर्तन उपस्थित हो गया है एवं नारी सुखी एवं सुरक्षित है। स्थितियां इसके ठीक विपरीत हैं किन्तु महिला आन्दोलनों के प्रभाव से आज नारी जिस तरह संगठित होकर इन स्थितियों का सामना कर रही है एवं प्रश्न उठा रही है, उसके माध्यम से सामाजिक परिवर्तन की दिशा एवं संभावना प्रबल हो रही है।



# महिला समूह अजमेर – नगर में महिला आंदोलन का एक दशक

( महिला दिवस पर विशेष)

लगभग एक दशक से महिला समूह अजमेर जिले की संकटग्रस्त महिलाओं के लिए कार्य कर रहा है। पहले यह समूह अजमेर जिले में विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्र में एक स्वास्थ्य परियोजना से संबद्ध था पर धीरे–धीरे जब इसके सदस्य राष्ट्रव्यापी महिला आंदोलन से जुड़ते चले गए और उन्हें यह लगने लगा कि महिला स्वास्थ्य को उसके सामाजिक व आर्थिक परिप्रेक्ष्य में भी देखना चाहिए तो वे अजमेर के गांवों और शहरों की महिलाओं के दुःख, दर्द एवं उनके जीवन की समस्याओं से जुड़ते चले गए और इस प्रकार एक स्वैच्छिक संगठन महिला समूह का जन्म हुआ। अजमेर नगर में 27 जनवरी 1989 को घटे रीना सिसोदिया दहेज हत्याकाण्ड की प्रतिक्रिया स्वरूप लगभग 600 महिलाओं ने रैली निकालकर अपना विरोध दर्ज किया और जब इतनी सारी महिलाएँ गांवों और शहर से निकलकर एक साथ जुड़ीं तो लगा कि इस ताकत को जोड़े रखना जरूरी है। क्योंकि अजमेर नगर में औरतों के लिए कोई भी ऐसा स्वैच्छिक संगठन नहीं था जो महिलाओं पर होने वाले अन्याय व शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाता। अतः नगर व ग्राम की कुछ संवेदनशील महिलाओं ने एक संगठन बनाने का संकल्प लिया और सप्ताह में दो बार मिलकर नारी उत्पीड़न के विरूद्ध रणनीति बनाने का निश्चय किया। दिल्ली से राजस्थान में आकर स्वास्थ्य परियोजना में कार्यरत दो उत्साही युवतियों डॉ. आरती साहनी एवं मलिका विरदी ने इस संगठन का सूत्रपात करने में विशेष भूमिका का निर्वाह किया और अजमेर के स्कूलों, कॉलेजों में अध्ययन एवं अध्यापनरत छात्राओं, शिक्षिकाओं, गृहिणियों, महिला वकीलों, सरकारी कार्यक्रमों से जुड़ी कार्यकर्ताओं एवं ग्रामीण अंचल की महिलाओं को साथ लेकर महिला समूह अजमेर संगठन को जन्म दिया। धीरे– धीरे इस संगठन के सदस्यों की संख्या एवं गतिविधियों

में वृद्धि होती गयी एवं मुकुन्द गार्डन्स, आदर्शनगर में इसका कार्यालय भी स्थापित हो गया जो सप्ताह में दो दिन शनिवार एवं सोमवार को खुलने लगा। अजमेर जिले में उन महिलाओं को नैतिक संबल मिलने लगा जो अभी तक कोई सहायता ढांचा (सपोर्ट स्ट्रक्चर) न होने के कारण अपने को बिल्कुल अकेली व असहाय मान रही थीं। अनेक शोषित महिलाओं ने महिला समूह के कार्यालय में आकर अपने उत्पीड़न की पीड़ा महिला समूह के सदस्यों के साथ बांटनी शुरु कर दी। महिला उत्पीड़न के विविध पक्ष उजागर होने लगे – पारिवारिक हिंसा, दहेज़ के लिए की जाने वाली हिंसा, परिवार के भीतर पिता या निकट संबंधियों द्वारा यौन शोषण, शराबी पति द्वारा शारीरिक यातना, कानून की लम्बी लड़ाई में न्याय व्यवस्था का स्त्री विरोधी चरित्र, पति द्वारा दूसरा विवाह कर पहली पत्नी पर अत्याचार ढाना, गांवों में नाता प्रथा का लाभ उठाकर पति द्वारा पत्नी का परित्याग, दलित महिलाओं पर अत्याचार आदि इसी प्रकार के मामले गत एक दशक से महिला समूह में दर्ज हो रहे हैं।

महिला समूह के सदस्य मिलकर इन समस्याओं पर विचार विमर्श करते हैं और पारिवारिक समस्याओं में दूसरे पक्ष की बातचीत भी सुनते हैं। दोनों पक्षों के बीच पहले तो सुलह करवाने का प्रयास किया जाता है और यदि ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों पक्षों में साथ रहने की संभावना बिल्कुल नहीं है तो फिर उन्हें आपस में समझौता करने की सलाह दी जाती है। कुछ महिलाएँ जिनके मामले पारिवारिक न्यायालय या किसी अन्य न्यायालय में विचाराधीन हैं किन्तु उनमें कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हो पा रही है जब वे महिला समूह से सहायता चाहती हैं तो उन्हें अच्छे वकील के पास ले जाया जाता है और उनकी तारीखों पर कुछ सदस्य कोर्ट जाकर उनके वकीलों से भी बात करते हैं और उनके साथ भी रहते हैं ताकि वे कोर्ट के माहौल में अपने आपको अकेली अथवा निराश्रित न समझें। महिला समूह के सदस्य पीड़ित महिला के ससुराल पक्ष वालों को भी समूह के ऑफ़िस में बुलाकर उनसे बात करते हैं या उनके घर जाकर भी समझाइश करवाने का प्रयास करते हैं।



कई बार ग्रामीण अथवा अशिक्षित महिला के साथ बहुत अन्याय होता है पर जानकारी के अभाव में वह कोई कदम नहीं उठा पाती। ऐसी महिला जब महिला समूह के पास आती है तो महिला समूह के सदस्य जिला प्रशासन के अधिकारियों जैसे बी.डी.ओ., थानाधिकारी, एस.पी., डी.आई.जी., कलेक्टर एवं संभागीय आयुक्त के पास उस महिला के साथ चले जाते हैं और उस महिला को शीघ्र न्याय दिलाने के लिए इन अधिकारियों से आग्रह करते हैं। गत वर्ष ही एक मामले में एक ग्रामीण स्त्री को उसके पति के मरते ही उसके ससुराल वालों ने संपत्ति से बेदखल कर उसके दो वर्ष के पुत्र को भी छीनकर उसे घर से बाहर निकाल दिया था किन्तु महिला समूह के प्रयासों व संभागीय आयुक्त की सहायता से उस महिला को उसका बच्चा वापिस मिल गया। इसी तरह दहेज को लेकर लगभग हत्या का मानस बना चुके एक युवती के ससुरालवाले जब उसे अमानवीय यातनाएँ दे रहे थे तब उसके मायके वालों द्वारा महिला समूह से संपर्क किए जाने पर महिला समूह के सदस्यों ने सिटी मजिस्ट्रेट की सहायता से उस युवती को उसके ससुराल जाकर मरने से बचाया। एक अन्य युवती के पति की मृत्यु हो जाने पर जब उसको पति के कार्यालय द्वारा उसे नौकरी दिए जाने का उसके ससुराल वालों ने उसके चरित्र पर कीचड़ उछालते हुए भारी विरोध किया तो महिला समूह वाले बार–बार उस कार्यालय के अधिकारियों से मिले और उस विधवा युवती को नौकरी दिलवाने में उसकी सहायता की। अजमेर जिले के ग्रामीण क्षेत्रों में भी कई बार महिला समूह के सदस्यों ने पंचायतों व जाति पंचायतों में जाकर पीड़ित महिलाओं को उनका हक दिलाने का प्रयास किया है। गांव व शहर दोनों ही स्तरों पर अब लोग न्याय प्रक्रिया की बोझिलता एवं विलंब से ऊब चुके हैं और सही व तुरन्त न्याय की कामना में महिला समूह के सदस्यों को अपनी जाति पंचायत में बुलाकर मध्यस्थता करने के लिए आमंत्रित करते हैं। हाल ही में महिला समूह ने इस प्रकार के कई मामलों में समझौता करवाकर महिलाओं को उनका पूरा स्त्रीधन वापिस दिलवाया है। यही नहीं महिला समूह का प्रयास रहता है कि स्त्री व पुरुष दोनों पक्षों की बात सुनकर ही निर्णय तक पहुँचा जाए।

इसके अतिरिक्त स्त्री पर होने वाले गंभीर उत्पीड़न जैसे हत्या, बलात्कार, या सामूहिक बलात्कार जैसे मुद्दों पर महिला समूह के सदस्य नगर की जनता का ध्यान आकर्षित करने के लिए रैली व धरनों का आयोजन भी करते हैं। ये मुद्दे स्थानीय भी होते हैं, राज्य व देश से भी जुड़े होते हैं। देशभर के महिला आन्दोलन एवं महिला संगठनों के साथ महिला समूह का जुड़ाव है और समय समय पर देश के विभिन्न महिला संगठनों द्वारा आयोजित कार्यक्रमों एवं मुद्दों में महिला समूह की भागीदारी रहती है। महिला समूह के सदस्यों ने बीजिंग में होने वाले अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन की तैयारी में भाग लिया और 1990, 1994 व 1997 में क्रमशः कालीकट, तिरूपति व रांची में आयोजित हुए चौथे, पाँचवें व छठे राष्ट्रीय सम्मेलनों में भी शिरकत की।

संकटग्रस्त महिलाओं के काम से प्रारंभ होकर अब महिला समूह का काम निकटवर्ती गांवों में विस्थापन, पंचायती व्यवस्था एवं विकास के अन्य मुद्दों तक फैल गया है। इसी कारण 8 मार्च 1998 को ग्रामीण महिला समूह का उद्घाटन होने जा रहा है, जिसका कार्यालय घूघरा ग्राम में होगा। शहरी क्षेत्र में महिला समूह अजमेर का कार्यालय वर्तमान में यादव शिव मन्दिर, गंज में है जो प्रत्येक मंगलवार, बृहस्पतिवार व शनिवार को दोपहर में खुलता है। महिला समूह की कार्यकर्ता भंवरी देवी भाट को शेलर एडम्स फाउंडेशन अमेरिका द्वारा वर्ष 1995 में रिसोर्सफुल वीमन्स अंतर्राष्ट्रीय अवार्ड प्रदान किया गया है। एक अन्य कार्यकर्ता छग्गीबाई को रसूलपुरा ग्राम का सरपंच चुना गया है।

इस प्रकार गत एक दशक से महिला समूह अजमेर ने विश्व व राष्ट्रव्यापी महिला आंदोलन से जुड़कर उत्पीड़ित महिलाओं को जागरूक करने का बीड़ा उठाया है और शोषण का सामना करने के लिए उन्हें नैतिक संबल प्रदान किया है ताकि वे अबला का विशेषण त्यागकर सबला बनकर समाज में अपनी सार्थक पहचान बना सके।



# छठे राष्ट्रीय महिला सम्मेलन के मुद्दे और भारतीय नारी की वर्तमान स्थिति

( महिला दिवस पर विशेष )

स्वतंत्रता आंदोलन में भारतीय महिलाओं ने भी अपना विशेष योगदान दिया था। सन् 1857 की क्रान्ति से लेकर 1947 के स्वतंत्रता दिवस तक लगभग नब्बे वर्षों के स्वतंत्रता संग्राम में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, बेगम हजरतमहल, विजयलक्ष्मी पंडित, सरोजिनी नायडू, कैप्टन लक्ष्मी सहगल जैसी कितनी ही वीर ललनाएँ थीं जिन्होंने राष्ट्र को स्वतंत्रता का स्वर्णिम सूर्योदय दिखलाने के लिए निरंतर अंधेरे के विरूद्ध लड़ाई जारी रखी। किन्तु राष्ट्र निर्माताओं ने जिस उत्साह व गर्मजोशी के साथ भारतीय नारी को इस आंदोलन के दौरान प्राथमिकता एवं महत्व प्रदान किया था, स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात उसे कागजी अधिकार तो प्रदान किए किन्तु वास्तव में उसे फिर से हाशिए पर ढकेल दिया।

सातवें दशक में जब पूरे विश्व में नारी मुक्ति आंदोलन के स्वर गूंजने लगे तो भारतीय नारी ने भी एकजुट होकर राष्ट्रीय स्तर पर सम्मेलन किए और मुक्ति की तड़प जाहिर की। अब तक राष्ट्रीय स्तर पर छः सम्मेलनों का आयोजन किया जा चुका है जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :–

पहला सम्मेलन देशव्यापी बलात्कार के विरोध में 1980 में बंबई में हुआ जिसमें स्वायत्त महिला संगठनों से जुड़ी लगभग 200 महिलाएँ पहली बार एकसाथ एकत्र हुईं। दूसरा सम्मेलन भी 1985 में बंबई में ही आयोजित हुआ। देश भर में उस समय तक पनपे महिला संगठनों से 380 महिलाओं ने इस सम्मेलन में भाग लिया और उन्होंने महिला आंदोलन के उभरते नज़रिए पर चर्चा की। तीसरा सम्मेलन महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने के उद्देश्य से 1988 में पटना में आयोजित किया गया। इसमें 760 महिलाओं ने शिरकत की। बिहार के महिला आंदोलन

को देशभर की महिलाओं के आने से उत्साह एवं बल मिला। चौथा सम्मेलन 1990 में कालीकट में हुआ। देश के लगभग 113 संगठनों की 2980 महिलाओं ने इस सम्मेलन में भागीदारी निभाई। पाँचवां सम्मेलन 1994 में तिरूपति में हुआ। इसमें 3000 से अधिक महिलाएँ जुड़ीं और उन्होंने सांप्रदायिकता, सरकार की नई नीति और सरकारी आतंकवाद के मुद्दों पर बातचीत की।

छठा सम्मेलन 28 से 30 दिसम्बर 1997 को रांची में आयोजित हुआ जिसमें 6000 से भी अधिक महिलाओं ने भाग लिया। इसमें पहले दिनांक 28 दिसम्बर को औरतों का विस्थापन, राजसत्ता का स्त्री विरोधी चरित्र एवं औरतों के खिलाफ़ बढ़ती हिंसा – इन तीन मुख्य विषयों पर चर्चा हुई। देश के कोने–कोने से आयी महिलाओं ने तीनों विषयों पर खुलकर बातचीत की। विस्थापन के बारे में उनका मत था कि विस्थापन केवल बड़े बांध बनाने से ही नहीं होता बल्कि स्त्री को नौकरी या किसी विभाग या परियोजना से निकाले जाने पर भी होता है। कम्प्यूटर के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण भी आज कितनी ही महिलाओं को नौकरी से निकाला जा चुका है। कितनी ही महिलाएँ इस सम्मेलन में ऐसी थीं जो विस्थापन की मार से सीधे प्रभावित थीं। झारखंड की महिलाओं ने बताया कि वहां अब 27 प्रतिशत लोग ही रह गए हैं, 73 प्रतिशत लोग विस्थापित हो चुके हैं। देश के कई प्रदेशों में भारी मात्रा में विस्थापन हुआ है किन्तु सरकार की पुनर्वास नीति इतनी अधूरी है कि इन विस्थापितों का सही रूप से पुनर्वास भी नहीं हुआ है और स्वतंत्रता की अर्धशति बीतने के बाद भी ये विस्थापित लोग दर–दर भटक रहे हैं। विस्थापन की मार की सीधी शिकार महिलाएँ होती हैं, अतः इस समस्या पर काफ़ी विस्तार से चर्चा की गई।

चर्चा का दूसरा महत्वपूर्ण विषय था राजसत्ता का स्त्री विरोधी चरित्र। विभिन्न महिला संगठनों के अपने अनुभवों से यही तथ्य स्पष्ट होता है कि राजसत्ता का चरित्र एवं व्यवहार स्त्री विरोधी है। राजसत्ता द्वारा महिलाओं को गंभीरता से नहीं लिया जाता। न्याय, व्यवस्था, पुलिस



व प्रशासन का रवैया भी महिलाओं के प्रति संवेदनशील नहीं है। कार्यक्षेत्र में भी कार्यरत श्रमिक महिलाओं को कई बार यातना के दौर से गुज़रना पड़ता है। फैक्ट्री में कार्यरत श्रमिक महिलाओं ने बताया कि उन पर होने वाले शोषण को हल्के तौर पर लिया जाता है। सबसे अधिक विडम्बना यह है कि सरकारी महिला कल्याणकारी योजनाओं में भी महिलाओं का शोषण किया जा रहा है। महिला विकास के उद्देश्य से खुली ये संस्थाएँ स्वयं महिला विरोधी रवैया अपना रही हैं।

चर्चा का तीसरा आयाम था औरतों के खिलाफ़ बढ़ती हिंसा। इस पर व्यापक चर्चा हुई क्योंकि पूरे देश में महिलाओं पर हिंसा का अनुपात उत्तरोत्तर वृद्धि पर है। बिहार की खेतीहर महिलाओं ने अपनी पीड़ा की दास्तान सुनाते हुए बताया कि संपन्न वर्ग द्वारा उन पर बलपूर्वक हिंसा की जाती है, यहां तक कि उनकी भूमि पर भी ज़बरदस्ती कब्जा कर लिया जाता है। दलित महिलाएँ उच्चवर्ग द्वारा यौन–हिंसा की शिकार भी बनाई जाती हैं। चाहे बिहार हो या राजस्थान, उत्तर प्रदेश हो या गुजरात – प्रायः देश के हर प्रान्त में महिला हिंसा की घटनाओं में निरंतर वृद्धि हो रही है।

दूसरे दिन 29 दिसंबर 1997 को आदिवासी, दलित एवं मुस्लिम औरतों की विभिन्न समस्याओं पर चर्चा हुई। इसके साथ–साथ विभिन्न सत्रों में जैन्डर न्याय आधारित कानून, प्राकृतिक संसाधन, यौनिकता, सांप्रदायिकता, स्वास्थ्य, परिवार व सहायता के ढ़ांचे, स्त्रियां व काम तथा नारी आंदोलन में उभरते विभिन्न दृष्टिकोणों पर चर्चा हुई। अंतिम तीसरा दिन विदेश में रहने वाली भारतीय महिलाओं की समस्या पर चर्चा करने एवं रैली निकालने में बीता। इस प्रकार छठा नारी मुक्ति सम्मेलन 30 दिसम्बर 1997 को सम्पन्न हुआ।

इन छः आंदोलनों के पश्चात् भी भारतीय नारी की स्थिति शोचनीय बनी हुई है। उस पर विभिन्न स्तरों पर जो शोषण की प्रक्रिया चल रही है, उसके तीन प्रमुख आधार हैं – जातिगत, वर्गगत एवं लिंगगत। एक ओर वह पारिवारिक हिंसा की शिकार बनाई जाकर कभी

दहेज की बलिवेदी पर जलाई जा रही है तो कभी अपने ही परिवार के सदस्यों द्वारा यौन उत्पीड़न की भी यातना झेल रही है। ऊँची जाति के लोगों द्वारा उसे उसकी ही ज़मीन से बेदखल किया जा रहा है और आवाज उठाने पर सामूहिक बलात्कार कर उसकी इज्जत को लूटा जा रहा है। लिंगभेद की तो वह जन्म से शिकार है। परिवार में अपने बारे में महत्वपूर्ण निर्णय लेने के अधिकार से उसे वंचित किया जाता है और पुरुष प्रधान मानसिकता से ग्रस्त पितृसत्तात्मक सोच वाला समाज उसका तरह–तरह से शोषण कर रहा है। वह घर के बाहर ही नहीं, घर में भी सुरक्षित नहीं है। समाज में आज भी संपन्न व निर्धन दो वर्ग विद्यमान हैं और संपन्न वर्ग द्वारा निर्धन वर्ग की महिला का शोषण करना अपना जन्म सिद्ध अधिकार माना जाता है। कागज़ी रूप से उसे हर स्तर पर बराबरी का अधिकार प्राप्त है। वह पिता व पति की संपत्ति की समान अधिकारिणी है पर कितनी महिलाओं को यह अधिकार वास्तव में प्राप्त होता है? न्याय व्यवस्था ने पारिवारिक न्यायालय की मृग मरीचिका दिखाकर उसे लुभाया जरूर है किन्तु शीघ्र न्याय की आशा में भटकते–भटकते न्यायालय की चौखट पर जाते–जाते उसकी उम्र के कितने ही पड़ाव गुजर जाते हैं पर उसे न्याय नहीं मिलता। पुलिस से मदद माँगने पर भी उसे निराशा ही मिलती है, यहाँ तक कि महिला थानों में भी पुरुष पुलिस अफसरों की उपस्थिति उसे हतोत्साहित करती है क्योंकि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करवाने के लिए ही पुरुषवादी पुलिस उससे जो मशक्कत करवाती है और उसके प्रति जैसा संवेदनहीन रवैया अपनाती है, वह उसकी हिम्मत को तोड़ने के लिए काफ़ी है। तैंतीस प्रतिशत आरक्षण का सब्ज़बाग दिखाकर उसे पंचायतीराज में भागीदारी निभाने का आमंत्रण तो सत्ता द्वारा दिया जाता है पर चुनाव जीतकर वार्डपंच, सरपंच या पंच बनकर उसे कितने अधिकार प्राप्त होते हैं? कई स्थानों पर तो पंचायत में भी उसका पति ही बैठता है और मात्र हस्ताक्षर लेकर उसे दरकिनार कर देता है। पुरुष प्रधान सोच उसके बढ़ते हुए वर्चस्व को अविश्वास प्रस्ताव लाकर प्रश्नचिन्हों के घेरे में डाल देता है। सांप्रदायिक हिंसा भी भड़कती है पुरुषों के बीच, पर उसकी पाशविकता



की शिकार बनती हैं औरतें। सन् 1984 व 1992 के दंगे इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

भंवरी भटेरी हो या उषा धीमान, माया त्यागी हो या शिवपतिया, शिवानी जडेजा हो या जे.सी.बोस छात्रावास कांड की शिकार युवती, शाहबानो हो या लाडनू कांड की शिकार जैन महिला – क्या इस अंतहीन सूची की असंख्य महिलाओं को न्याय मिल पाया है? कई कांड तो संसद सत्र के समय मौसमी मेंढकों की तरह टर्राते हैं और ठंडे बस्ते में बंद कर दिए जाते हैं। इनमें हमारे शहर का अश्लील छायाचित्र कांड भी है। और लोगों की याददाश्त इतनी जल्दी विस्मृति के गह्वर में डूब जाती है कि वे प्रतिक्रिया करना भी छोड़ देते हैं। कवि दुष्यन्त कुमार ने कहा था :

मेरे सीने में न सही तेरे सीने में सही
हो कहीं भी आग लेकिन आग जलनी चाहिए

लोगों के सीने में आग जलनी तो क्या लगनी ही बन्द हो गई है। हमारी आंखों के सामने रोज ही अनेक स्त्रियों को अमानुषिक अत्याचारों की यंत्रणा दी जाती है। पर हम या तो मूकदर्शक बने रहते हैं या तटस्थ होकर अपने हाथ झाड़ लेते हैं। जब तक आग हमारे अपने घर को नहीं जलाए हम पड़ौसी के जलते घर को बचाने की चेष्टा नहीं करेंगे। बल्कि हो सके तो उस आग से अपने ठिठुरते हुए हाथ जरूर सेक लेंगे। या फिर हम हर उत्पीड़न की ज़िम्मेदारी महिला संगठनों पर डालकर निश्चिन्त हो जाते हैं।

हम इस देश के नागरिक हैं, समाज के प्राणी हैं अतः क्या इसकी आधी जनसंख्या के साथ हमारा कोई सरोकार नहीं है? कब तक हम नारी को देवी का काल्पनिक दर्जा देकर उसका कागज़ी महिमामंडन करते रहेंगे? उसे मानवी मानकर, सहचरी बनाकर उसका दर्द बांटना कब शुरू करेंगे? त्रेतायुग में राम ने पाषाण बना दी गई नारी जाति रूपी अहिल्या का उद्धार किया, द्वापर युग में कृष्ण ने अपनी सखी द्रोपदी को

सामूहिक चीरहरण से बचाकर उसकी लज्जा की रक्षा की। कलियुग में क्या हम किसी अवतार की प्रतीक्षा करते हुए अपनी कर्मठता को पूर्ण रूप से तिलांजलि दे देंगे और इक्कीसवीं गिनती की ओर तेजी से भागती हुई समय की शताब्दी में अपनी आधी जमीन को सूखी व बंजर रखकर मात्र अपने हिस्से को ही सींचकर हरा–भरा करते रहेंगे? छः बार हमारे देश की महिलाएँ राष्ट्रीय स्तर पर मिल चुकी हैं और कई बार उन्होंने विश्व महिला सम्मेलनों में भी भागीदारी निभाई है। इन आयोजनों में महिलाओं की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई संख्या ने यह सिद्ध कर दिया है कि वे अब जाग चुकी हैं। कल्पना चावला बन उसने अंतरिक्ष में परचम लहराए हैं तो अरून्धती राय के रूप में उसने विश्व के सबसे प्रतिष्ठित बुकर्स अवार्ड पर अधिकार दर्ज किया है। डायना हेडन बनकर उसने विश्व साम्राज्ञी का कोमल सुंदर खिताब जीता है तो किरण बेदी के रूप में उसने तिहाड़ जेल के खूंखार कैदियों पर भी अपना दबदबा कायम कर प्रतिष्ठित मैग्सैसे पुरस्कार प्राप्त किया है। मेधा पाटकर के रूप में वह बांध विस्थापन के पीड़ितों की मसीहा बनी है तो अरूणा राय के रूप में वह सूचना के अधिकार की जायज माँग प्रस्तुत कर रही है। अब उसे किसी उद्धारक की प्रतीक्षा नहीं रही है वरन् आज उसे पुरुष के रूप में एक सहभागी एवं सहयात्री की कामना है। अतः आइए इस महिला दिवस पर हम नारी शक्ति की पहचान कर अपनी जीवन–यात्रा में उसे साक्षी बनाकर आदर्श समाज एवं राष्ट्र का निर्माण करें।



# अस्तित्व संकट से जूझती तीसरी दुनिया की नारी

( महिला दिवस पर विशेष )

मर्जियह अहमदी ओस्कोई ने अपनी कविता "मैं एक औरत" में लिखा है–

"मैं एक औरत हूँ। जिसके लिए तुम्हारी शब्दावली में
कोई पर्यायवाचक शब्द नहीं
जो मेरा महत्व बता सके
क्रोध से भरे जख्मों का सैलाब है
एक औरत जिसकी आंखों का नशा
स्वतंत्रता की गोली का सुर्ख रंग है
एक औरत, जिसके हाथों ने
सारे दुःखों के बाद
सीखा है बन्दूक उठाना भी"

सचमुच ही नारी ने अपने अस्तित्व के लिए एक लंबी लड़ाई लड़ी है और वह लड़ाई आज भी जारी है किन्तु जिस प्रकार के संक्रान्तिकाल से आज समूचा विश्व गुजर रहा है, उस स्थिति में नारी विकास पर प्रश्न चिन्ह लगने लगे हैं और ऐसी स्थितियां बन रही हैं जो उसके अस्तित्व को समाप्त कर देने को लालायित हैं। यह खतरा तीसरी दुनिया के देशों में सबसे अधिक मंडरा रहा है।

आज फ़ासीवाद और लोकतंत्र के बीच संघर्ष चल रहा है और फ़ासीवादी ताकतें लोकतांत्रिक शक्तियों को पछाड़ने में लगी हुई हैं। यह स्थिति नारी के लिए बहुत खतरनाक है, क्योंकि जब–जब विश्व में फासीवाद उभरा है, उसने सीधे स्त्री की अस्मिता को ललकारा है और उसे मानव होने के अधिकार से भी वंचित किया है।

सोवियत रूस के विघटन के पश्चात पूरे विश्व पर अमरीकी पूंजीवाद का शिकंजा कसता चला जा रहा है। संतुलन के जिन दो मोर्चों पर विश्व टिका था वहां अब मात्र अमरीका का वर्चस्व स्थापित हो गया है। फलस्वरूप एक ऐसी उपभोक्तावादी संस्कृति जन्म ले रही है, जिसकी सीधी शिकार स्त्री हो रही है। यह भी एक विचित्र विडम्बना है कि 8 मार्च 1857 को जिस अमरीका ने कामगार मज़दूर बिगुल बजाकर महिला आंदोलन का सूत्रपात किया था, उसी अमरीका ने तीसरी दुनिया के देशों पर आर्थिक और सांस्कृतिक गुलामी लादकर फ़ासीवाद को बढ़ावा दिया है और नारी मुक्ति के मार्ग को अवरुद्ध किया है। खाड़ी युद्ध में विजय प्राप्त करने के बाद तो अमरीका के हौंसले और बुलन्द हुए हैं और उसके द्वारा समर्थित देशों में स्त्रियों पर उत्पीड़न निरंतर बढ़ता जा रहा है। सउदी अरब में उन्हें बलपूर्वक बुर्के में कैद किया जा रहा है। वहां वे वोट नहीं दे सकतीं, अपनी कार स्वयं नहीं चला सकतीं। यहां तक कि उन्हें नर्स बनने का प्रशिक्षण लेने की भी मनाही है ताकि वे असूर्यम्पश्या बनी रहें। अमरीका के रहमोकरम पर जीने वाले पाकिस्तान में तो न्यायालय में दो महिलाओं की गवाही को एक पुरुष की गवाही के बराबर माना जाता है, यानी वह आधी इन्सान ही मानी जाती है।

अमरीका की शह पर कुवैत के शाही हरम में हर सप्ताह स्त्रियों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हो रही है। हमारे पड़ौसी बंगलादेश की डॉक्टर तस्लीमा नसरीन को अल्पसंख्यक हिन्दुओं के विषय में सच लिखने पर कठमुल्लाओं द्वारा फतवा देकर नजरबंद किया गया है और उनके सिर की कीमत मात्र पचास हज़ार टका आंकी जा रही है।

हमारे अपने देश में 6 सितम्बर 1992 के बाद जिस तरह सूरत में ताप्ती एक्सप्रेस से 15 साल की आयशा बेगम को निकालकर उसके साथ सामूहिक बलात्कार कर उसे जलाया गया, जिस प्रकार 25 वर्षीया जमीना बानू के तीन बच्चों व पति की उसके सामने ही नृशंस हत्या करके, उसके साथ बलात्कार कर, उसे मानसिक रूप से विक्षिप्त होकर, एक बेबस जीवन जीने को बाध्य किया गया, जिस तरह 26 मई 1993



को सहारनपुर के न्यायालय परिसर में उषा धीमान को निर्वस्त्र कर उसकी पिटाई की गई और अभी 21 जनवरी 1994 को इलाहाबाद जिले के दौना गांव में जिस प्रकार शिवपतिया को निर्वस्त्र कर पूरे गांव में घुमाया गया, ये सब तो बहुत थोड़े से उदाहरण हैं, जो तीसरी दुनिया के देशों में जीने वाली महिलाओं पर निरन्तर बढ़ते जा रहे अत्याचारों की शुरुआत के साक्षी हैं। यह सिलसिला कहां तक बढ़ता जाएगा पता नहीं!

हमारे अपने राजस्थान के जयपुर जिले का बहुचर्चित भंवरी भटेरी कांड इस तथ्य का प्रत्यक्ष प्रगटीकरण करता है कि सरकार नारी जागरण के नाम पर कई कार्यक्रम बनाती है पर जब स्त्री स्वयं जागृत होकर दूसरों को जागृत करने लगती है तब उसके साथ घोर अमानुषिक व्यवहार करके सारे विकास को मखौल बना दिया जाता है। राजस्थान में महिला विकास कार्यक्रम की नींव है "साथिन" जो गांवों में चेतना का प्रसार करती है, किन्तु जब भंवरी बाई ने रामकरण गूजर की एक वर्ष की बेटी के बाल विवाह को रोकने का प्रयास किया तो 22 सितम्बर 1992 को उसके पति के सामने ही उसका रामकरण गूजर और उसके अन्य साथियों द्वारा बलात्कार किया गया ताकि वह फिर कभी ऐसी सामाजिक कुरीति के खिलाफ़ आवाज न उठा सके जिससे नन्ही बालिका का शोषण होता हो। पश्चिमी बंगाल में भी सक्रिय महिला कार्यकर्ताओं के साथ ऐसा ही हुआ।

यही नहीं स्वास्थ्य के नाम पर जो कार्यक्रम तीसरी दुनिया के देशों पर थोपे जा रहे हैं, उनका सीधा दुष्परिणाम स्त्री को भोगना पड़ रहा है। तीसरी दुनिया के देशों को अपने परीक्षणों के लिए कचरे के डिब्बे की तरह इस्तेमाल किया जा रहा है। नॉरप्लान्ट आर. जैसे अपरीक्षित गर्भनिरोधक को जिस तरह भारत, बांग्लादेश व अन्य विकासशील देशों पर लागू किया जा रहा है, उसके भयंकर परिणाम हो सकते हैं। इससे स्त्री रक्तचाप, दिल के दौरे व लकवे की शिकार तो हो ही सकती है, अपना मानसिक संतुलन भी खो सकती है। हमारी अपनी सरकार ने धनाभाव के नाम पर मलेरिया और तपेदिक रोकने के कार्यक्रमों पर एक

ओर 25.5 करोड़ रुपयों की कटौती की है, दूसरी ओर 800 करोड़ रुपये की सहायता अमरीका सरकार से केवल हमारे एक प्रांत उत्तरप्रदेश में नॉरप्लान्ट आर. जारी करने के लिए स्वीकार की है।

प्रसार माध्यमों में भी यह उपभोक्ता संस्कृति नारी को मात्र विज्ञापन एवं बिकाउ माल के रूप में प्रस्तुत कर रही है। छोटा पर्दा हमारी नसों में मीठा जहर घोल हमें घंटों अकेले व निष्क्रिय रहने की ओर उन्मुख कर रहा है और संगठित होकर आगे बढ़ने के हमारे सारे रास्तों पर प्रवेश निषेध की सूचनाएं लगाता जा रहा है।

प्रश्न उठता है कि आज नारी क्या करे? क्या चुपचाप रहकर अपने अस्तित्व को तिल–तिल कर होम होते हुए देखती रहे? वहीं विकास की जो थोड़ी बहुत किरणें उसे दिखाई दे रही हैं वे उसकी अंधेरे के विरूद्ध जारी बहुत लम्बी लड़ाई का परिणाम है। अतः वह अपने अधिकारों को पहचाने व उनका उपयोग करे। 17 दिसम्बर 1993 को न्यायाधीश श्री टिबरेवाल द्वारा जो भंवरी भटेरी कांड में अभूतपूर्व निर्णय दिया गया है वह महिला आंदोलन के लिए ऐतिहासिक है क्योंकि अभियुक्तों की जमानत खारिज होने का व्यापक प्रभाव समाज पर पड़ेगा और अब साथिन अपने गांव में विकास कार्यक्रमों को संचालित करते समय घबराएगी नहीं। यह एक ध्यान देने योग्य तथ्य है कि इस निर्णय में महिला आंदोलनों की आवाज की भी महत्वपूर्ण भागीदारी है वर्ना एक वर्ष तक तो वे बलात्कारी गिरफ्तार ही नहीं किए गए थे।

आज जब देश की राजनीति में महिला को भागीदारी दी जा रही है तो वह अवश्य निर्णयात्मक भूमिका निभाए व अपने लिए बेहतर भविष्य का निर्माण करे।

हमारे देश में महिला आयोग के गठन ने नारी विकास को नई दिशा दी है तो अब प्रयास यह होना चाहिए कि मात्र देश की राजधानी में ही नहीं बल्कि प्रत्येक जिले में ऐसे महिला आयोग गठित हों जहां औरत अपने ऊपर हो रहे उत्पीड़न के खिलाफ़ आवाज उठा सके।



यह महिला आंदोलनों की माँग का ही परिणाम था कि 1964 में पारिवारिक हिंसा को दंडनीय अपराध मानकर देश में पारिवारिक न्यायालयों का गठन हुआ और यह आग्रह हुआ कि ऐसे मामले जल्दी निपटाए जाएं। अब नारी संगठनों को पारिवारिक न्यायालयों की प्रक्रियाओं को सुचारू रूप से चलाने की माँग करनी चाहिए ताकि वास्तव में स्त्री को शीघ्र न्याय मिल सके। आज बिहार की किसान महिला ने संगठित होकर जमीन के पट्टे पर अपना नाम लिखवाने का प्रयास किया है। महाराष्ट्र, केरल और गुजरात की खेतिहारी और कामगार महिलाएँ भी जागृत होकर अपने विकास के लिए प्रयास कर रही हैं। आंध्रप्रदेश में शराब–बन्दी आन्दोलन महिलाओं के कारण ही सफल हुआ है।

अतः जब स्त्री और पुरुष को समाज को मिलकर चलाना है तो पुरुष को भी अब सामंती दृष्टिकोण त्याग कर स्त्री को अनुगामिनी नहीं, सहयात्री के रूप में देखना चाहिए।

नारी शक्ति जब जागती है तब निर्माण होता है और सृष्टि रचनात्मकता की पुलक से भर उठती है। अस्तित्व संकट से जूझती तीसरे देश की नारी के लिए डॉ. तस्लीमा नसरीन ने निर्वाचित कॉलम में यह संदेश दिया है:

"ये दुनिया तुम्हारी है नारी! जैसे चाहो, वैसे जियो इस संसार में। ये संसार अगर एक नदी है तो तुम इस नदी में उतरकर चूर्ण करो लहरों का दर्प। ये संसार अगर एक आकाश है तो तुम इस आकाश में पंख पसारकर उड़ानें भरो। ये जीवन तुम्हारा है, असल में तुम्हारा है तो इस जीवन को जैसे चाहो, वैसे गुजारो। कायम करो स्वयं पर अपना अधिकार।"

अतः आज आवश्यकता है कि नारी अपनी शक्ति को पहचाने। उस पर विश्वास करे, स्वयं जगे और फिर सारे विश्व को जगाए।

# क्या औरत ही औरत की दुश्मन है?

(महिला दिवस पर विशेष )

अक्सर जब भी महिला अत्याचारों पर कोई संगोष्ठी या चर्चा होती है तो प्रबुद्ध पुरुषों और जागरुक महिलाओं द्वारा यह जुमला हवा में उछाल दिया जाता है कि वास्तव में औरत ही औरत की दुश्मन है। इसके समर्थन में यह तर्क दिया जाता है कि विवाहिता स्त्री को ससुराल में सताया जाता है सास व ननद के द्वारा। उसे जलाकर मारा जाता है, ससुराल की महिलाओं के द्वारा– पुरुषों की इसमें कोई भूमिका नहीं होती। दहेज की माँग भी सास द्वारा ही की जाती है। अतः महिला का उत्पीड़न महिला ही करती है, पुरुष नहीं।

किन्तु यदि हम बात की तह में जाएं और अपने समाज की संरचना तथा परिवार का समाजशास्त्रीय अध्ययन करें तो हम पाएंगे कि यह मात्र एक मिथ है कि औरत का शोषण औरत ही करती है। पुरुष–प्रधान मानसिकता का दबाव पूरे परिवार पर होता है। अतः परिवार का प्रत्येक सदस्य उस मानसिकता से ग्रस्त होता है। हमारे देश में ही नहीं पूरे एशिया में भी यही स्थिति रही है। पर्ल एस. बक के नोबल पुरस्कार से सम्मानित उपन्यास "द गुड अर्थ" का एक दृश्य मेरी आँखों के आगे अक्सर घूम जाता है– नायिका एक कृषक–स्त्री है। वह खेत में काम कर रही होती है कि उसे प्रसव–पीड़ा होती है। एक कन्या का जन्म होता है जिसका गला दबाकर उसे खेत में ही गाड़ देती है और परिवार वालों को बताती है कि उसने एक मृत कन्या को जन्म दिया है। वह यही सोचती है कि यह कन्या जीवन भर उसकी तरह मर–मर कर जीती रहे इससे तो अच्छा है कि वह एकबारगी ही मर जाए। यदि हम इस लोमहर्षक घटना का विश्लेषण करें तो पाएंगे कि ऐसा आखिर उस कृषक स्त्री ने क्यों किया? क्या वह अपनी बेटी की दुश्मन थी? पूरे उपन्यास में जिस तरह तिल–तिल करके जीते हुए उस स्त्री को दिखाया गया है, उसकी उत्तरदायी क्या वह स्वयं है? बिलकुल नहीं।



पर्ल. एस.. बक के ही एक अन्य उपन्यास "द पवेलियन ऑफ वुमन" में प्रमुख पात्र मैडम वू अपने पति को "फादर ऑफ माई सन्स" कहकर संबोधित करती है तो उसका पति उसे 'मदर ऑफ माई सन्स' कहता है। स्पष्ट है कि हमारे देश में ही नहीं वरन् हमारे पड़ौसी देशों में भी माता–पिता का गौरव उनके पुत्रों पर ही आधारित है। हमारे अपने देश के राजपूत परिवारों में जिस प्रकार जन्मते ही खाट के पाये के नीचे दबाकर नवजात बालिका को मार दिया जाता था क्या उसकी ज़िम्मेदार उसकी जन्मदात्री माँ रही है? उत्तरदायी है वह पुरुष प्रधान मानसिकता जो स्त्री को इन्सान ही नहीं मानती। अतः उसके जन्म पर आज भी शोक मनाया जाता है और लड़के के जन्म पर थाली बजाकर हर्ष प्रकट किया जाता है। भोजों का आयोजन किया जाता है। मेरे बचपन की एक सहेली के परिवार में पांच पुत्रियों और एकमात्र पुत्र के लालन–पालन में कितना अन्तर रखा जाता था, वह आज भी मेरे मन को अपार पीड़ा से भर देता है। मक्खन चुपड़ी रोटियां खाता था भाई, रोज नए कपड़े पहनता था भाई और उसकी तीमारदारी में लगी रहती थीं बहनें।

हमारे धर्मशास्त्रों, पुराणों और सामाजिक व्यवस्था ने सदा यह सीख दी है कि पुत्र मोक्ष प्रदान करने वाला है, पुत्र जन्म से बड़ा कोई पुण्य नहीं है। ऐसे–ऐसे कथन भी उद्धृत किए गए है– "कन्या मरणम् तत्काल दुःखम् परिणाम सुखम्" अर्थात बच्ची की मृत्यु से क्षणिक दुःख तो होता है पर इसका दूरगामी परिणाम सुखद होता है। आज भी पढ़े –लिखे माता–पिता बेटी के जन्म पर ठंडी सांस भरकर कहते हैं– "हमारे घर तो डिग्री आई है।" पर क्या इसका सेहरा स्त्रीवर्ग के सर पर बांधा जाए? कबीर, तुलसी जैसे महाकवि समाज सुधारक भी जब कहते हैं "नारी की झांई पड़त अंधा होत भुजंग" या "नारी तो हम भी करी, पाया नहीं विचार जब जानी तब परिहरि नारी परम विकार" अथवा "ढ़ोल, गंवार, शूद्र, पशु नारी, सकल ताड़ना के अधिकारी" तो आम जनता इन पंक्तियों का प्रासंगिक अर्थ न देखकर इनका सामान्यीकृत अर्थ निकालकर हर बुराई का श्रेय नारी को ही देने लगती है।

सवाल यह है कि क्या दहेज की माँग सास अपने उपभोग के लिए ही करती है? विवाह के साथ ही समाज द्वारा स्थापित मानदण्डों ने उसे सिखाया है कि पति के लिए उसे करवा– चौथ का निर्जलव्रत रखना है तो पुत्र के लिए गणेश चतुर्थी अथवा अहोई अष्टमी को निराहार रहना है। इसके अलावा भी अन्य कई व्रत–त्यौहार उसे पति व पुत्र के लिए वर्षभर रखने का निर्देश दिया जाता है। बचपन में वह अपने भाई को राखी बांधकर या भाईदूज का टीका करके ही अन्न ग्रहण करती है। अतः यदि माँ पुत्र के विवाह पर दहेज की माँग करती है तो अपने लिए नहीं बल्कि अपने पुत्र को सुखी व समृद्ध देखने की चाह ही उसे ऐसा करने के लिए प्रेरित करती है। बार–बार भ्रूण परीक्षण करवाकर कन्या भ्रूण को कौन नष्ट करवाता है? क्या माँ अपने भ्रूण को बार–बार नष्ट करवाने की सहर्ष सहमति दे सकती है? उसका पति या ससुराल का परिवार ही उसे परिवार को पुत्र न देने के कारण बार–बार ताने देता है और भ्रूण परीक्षण करने के लिए विवश करता है।

हमारे समाज में जिस प्रकार आये दिन स्त्री बलात्कार या सामूहिक बलात्कार की शिकार हो रही है क्या उसकी जिम्मेदार भी वह स्वयं है? हमारे अपने प्रदेश को तो नारी उत्पीड़न का स्वर्ण–पदक मिलना चाहिए। शिवानी जड़ेजा तेजाब कांड, नैना जोगाणी भीनमाल कांड, भँवरी भटेरी सामूहिक बलात्कार कांड या अजमेर का बहुचर्चित ब्लैकमेल कांड इन सभी प्रकरणों में जिन–जिन महिलाओं का शोषण हुआ है क्या वे या उसकी जैसी अन्य महिलाएँ इसके लिए दोषी थीं? आज महिलाओं के लिए धार्मिकस्थल, न्यायालय या पुलिस थाने भी निरापद नहीं रहे हैं; सांप्रदायिक जुनून का बदला भी उन्मादी लोग दूसरे वर्ग की महिलाओं के साथ बलात्कार करके लेते हैं। 1992 के बाद देश में घटी कई घटनाएं इसकी साक्षी हैं। वे कौन हैं जो माया त्यागी, शिवपतिया या उषा धीमाल को सरे आम निर्वस्त्र कर देते है? वे कौन हैं जो रुपकंवर को जबरदस्ती लपटों के हवाले करके फिर जयपुर की सड़कों में नंगी तलवारें लेकर सती–प्रथा के समर्थन में जुलूस निकालते हैं? वे कौन हैं जो पड़ौसी देश की तस्लीमा नसरीन को बाबरी मस्जिद



ढहाने के बाद बांग्लादेश में हिन्दू अल्पसंख्यकों पर हुए अत्याचारों की लज्जा–भरी दास्तान कलमबद्ध करने के लिए देश निकाला देते हैं? और वे कौन हैं जो आज ननों के साथ बलात्कार करके या कुष्ठ रोगियों की सेवा करने वाले अल्पसंख्यक समुदाय के समाज सेवकों और मासूम बच्चों की निर्मम हत्या करते हैं? हमें इस महिला दिवस पर सरकार से महिला आयोग या महिला आरक्षण बिल की ही माँग नहीं करनी है बल्कि अपना ठीकरा दूसरों के सिर पर रखकर फोड़ने वाले उन महिला विरोधी दुष्प्रचारकों की चालों को भी समझना है जो बार–बार स्वयं भी यह कहते हैं और महिलाओं को बरगलाकर उनसे ये कहलवाते हैं कि "अजी छोड़िए भी– औरत की असली दुश्मन तो औरत ही है।"

# भारत में महिला उत्पीड़न के विविध आयाम

(महिला दिवस पर विशेष )

हर वर्ष विश्व भर में महिला संगठनों द्वारा 8 मार्च का दिन बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता है। हम महिला दशक मना चुके हैं। भारत में चार बार महिला आन्दोलन पर राष्ट्रीय स्तर के सम्मेलन हो चुके हैं। अभी पिछला सम्मेलन केरल में कालीकट में 28 से 31 दिसंबर 1990 को संपन्न हुआ है, जिसमें देशभर की 2000 से अधिक महिलाओं ने भाग लिया। हमारे अजमेर जिले से चालीस से भी अधिक महिलाओं की भागीदारी इस सम्मेलन में रही है। ऊपर–ऊपर से देखने पर लगता है कि महिलाएँ बहुत आगे आ चुकी हैं, अपनी रक्षा स्वयं करने में पूर्ण समर्थ हैं, अपने अधिकारों के प्रति पूर्णतः जागरूक है और उनका वर्तमान सुखद, भविष्य उज्ज्वल है। किन्तु इक्कीसवीं सदी की दहलीज़ पर बैठा हमारा यह देश आज भी अपनी जनसंख्या के इस आधे भाग के प्रति जो दृष्टि रखता है वह चौंकाती ही नहीं है बल्कि आतंकित भी करती है।

घर हो या बाहर, कार्यालय हो या चौराहा, गांव हो या शहर , रेल का डिब्बा हो या पार्क, महिला को विभिन्न प्रकार के उत्पीड़नों का शिकार होना पड़ता है। अतीत और वर्तमान साक्षी है कि जब–जब लोगों पर सांप्रदायिकता का जुनून सवार होता है तब भी महिलाएँ प्रताड़ित होती हैं। दोनों ही पक्षों द्वारा अपनी शक्ति का पुरजोर प्रदर्शन महिलाओं पर ही किया जाता है।

हमारे संविधान ने महिला को बराबर के अधिकार दिए हैं। कानून के सुनहले पृष्ठों को पढ़कर तो ऐसा लगता है मानो उसे कोई समस्या हो ही नहीं सकती क्योंकि हर समस्या का निदान उसके लिए विभिन्न धाराओं में उल्लिखित है; हकीकत यह है कि यदि पारिवारिक उत्पीड़न से तंग आकर छुटकारा पाने के लिए महिला न्यायालय के दरवाज़े खटखटाती है और उसे कागजी न्याय मिल भी जाता है तो भी वास्तविक अधिकार और न्याय पाने के लिए उसे लंबी लड़ाई लड़नी



पड़ती है और कई बार तो लंबी लड़ाई का हश्र होता है प्रतीक्षा, प्रतीक्षा और अंतहीन प्रतीक्षा। पारिवारिक न्यायालय में ऐसे अनगिनत मामले रोज दिखाई दे रहे हैं, जहां न्यायालय द्वारा पत्नी को पति द्वारा निर्वाह भत्ते का आदेश हो जाता है पर पति द्वारा भत्ते का भुगतान नहीं किया जाता। उसके जीवन का बड़ा भाग इन कानूनी दांवपेचों में ही उलझकर रह जाता है।

घर में भी भारतीय नारी आदर्श गृहिणी के तमगों से लैस होकर पूरे परिवार का संचालन करती है पर उसकी भूमिका उत्सवों में परिचारक से अधिक की नहीं होती है। हर महत्वपूर्ण निर्णय पुरुष द्वारा किया जाता है और यदि वह नौकरी पेशा है तो उसे घर और बाहर दोनों मोर्चों को संभालना पड़ता है। परिवार के अन्य सदस्य उसे पूरी तरह से शोषित (एक्सप्लॉइट) करने में कोई कसर नहीं छोड़ते। उनके लिए वह एक यंत्रचालित मशीन है, जिसे सूर्य की पहली किरण से रात्रि के घनघोर अंधकार तक कार्यरत रहना ही है। शहरों के सिनेमाघरों के बाहर और सड़कों पर जिस तरह के अश्लील पोस्टर लगाकर नारी शरीर को प्रदर्शित किया जाता है वह कितना शर्मनाक है पर हम पास से गुज़र जाते हैं और प्रतिक्रिया तक नहीं करते।

कार्यालयों में भी जिस प्रकार से "देवी–माँ–सहचरी–प्राण" रूपी नारी का शोषण होता है, वह सर्वविदित ही है। होली के अवसर पर कुछ कार्यालयों में जो सौगात अपनी महिला सहकर्मियों को पुरुषों द्वारा दी जाती है उसका उल्लेख मात्र ही मन में जुगुप्सा के भाव जाग्रत कर देता है।

हमारा समाज आज दोहरे मानदंडों को लिए जी रहा है। बाहर से हम प्रगतिशील हैं, स्वतंत्र विचारों के हैं किन्तु भीतर ही भीतर हमारी प्रवृत्ति अभी भी आदिम है। हम भाषणों में, वार्तालापों में कहते कुछ और हैं किन्तु करते कुछ और हैं। यही कारण है कि कानून की धाराओं में दहेज अपराध है पर आजादी के बाद जितना दहेज लिया गया है और जितनी दहेज हत्याओं के आंकड़े बढ़े हैं, ये हमारी मानसिकता को बताने

के लिए पर्याप्त हैं। जिस प्रकार की छवि आज प्रसारित होने वाले प्रसार माध्यमों में नारी की उभारी जा रही है, वह भी पुरुष प्रधान समाज की मानसिकता को उजागर करती है। आज भी दूरदर्शन के लोकप्रिय सीरियल वही हैं, जहां नारी को देवी, त्यागमयी, पुरुष के चरणों की दासी एवं निज व्यक्तित्वहीन बताया जाता है। आज की फिल्मों में जिस तरह का व्यवहार महिला के प्रति दर्शाया जाता है और जिस रूप में उसे प्रस्तुत करके बॉक्स ऑफिस पर बेशुमार धन बटोरा जाता है, वह अत्यंत चौंकाने वाला है। किन्तु समाज नारी उत्पीड़न का इतना अभ्यस्त हो चुका है कि उसे इसमें कुछ भी विचित्र या आपत्तिजनक नहीं लगता।

तो इसके लिए क्या किया जाए? होंठ सीकर सीता–सावित्री की उपाधि से अलंकृत हो चुपचाप हर उत्पीड़न को अपनी नियति मान लिया जाए या अपने सही स्वरूप की पहचान कर समाज की मानसिकता को बदलने के लिए कृतसंकल्प हों? उत्तर महिला वर्ग ही दे सकती है। कहीं फिर किसी सुमित्रानंदन पंत को न कहना पड़े –

मुक्त करो नारी को मानव, चिर बंदिनी नारी को
युग–युग की बर्बर धारा से, जननी, सखी, प्यारी को।



# समाज के विकास में बालिका एक सक्रिय भागीदार

इस वर्ष हम सार्क बालिका वर्ष मना रहे हैं मात्र इसलिए हम कुछ आयोजन कर औपचारिकता की पूर्ति न करें किन्तु बहुत गहराई से इस बात का अध्ययन करें कि समाज के विकास में बालिका की क्या भूमिका है।

पहले हम इस बात पर विचार करें कि समाज में बालिका की क्या स्थिति है और इस स्थिति के लिए कौन उत्तरदायी है। मैं कुछ तथ्य देना चाहूँगी ताकि हम एक समाज वैज्ञानिक के समान पहले जो वास्तविक स्थिति है उसे पहचान लें। हम समाज की ऊपरी संरचना पर न जाकर समाज के उन आधारभूत तथ्यों को खोजें जिनके कारण लड़के लड़की में जन्म के बाद नहीं बल्कि जन्म के पहले ही भेदभाव, घृणा प्रारम्भ कर दी जाती है। भारत में आज प्रति 1000 बालक पर बालिका का औसत 933 है और यह औसत पिछले कुछ वर्षों में निरन्तर घटता जा रहा है और लड़की संख्या में दिनोंदिन कम होती जा रही है। भ्रूण परीक्षण की सुविधा ने तो बालिका के जन्म लेने के अधिकार को ही समाप्त कर दिया है अकेले बंबई में एक वर्ष में 78000 ऐसे गर्भपात हुए हैं जो भ्रूण परीक्षण में लड़की के पाये जाने के कारण करवाये गए थे। जब देश में एक महानगर के आंकड़े भीषण तथ्य को उद्घाटित करते हैं तो पूरे देश की तो पता नहीं क्या स्थिति होगी। ये वो देश है जहां नारी को आदिशक्ति एवं परम पूज्या माना जाता था, जहां वो जाबाला, गार्गी और मैत्रेयी के समान शास्त्रार्थ करने की क्षमता रखती थी और सीता और शकुंतला के समान जिसे स्वयंवर करने की स्वतंत्रता थी।

आज भारत में स्थिति यह है कि यहां लड़की होने का अर्थ मानव से कुछ कम होना माना जाता है। उसे आर्थिक रूप से निर्भर मानने के कारण बोझ समझ लिया जाता है। परंपरागत सामाजिक एवं

सांस्कृतिक मान्यताओं के कारण समाज की इस आधी जनसंख्या के प्रति अमानवीय दृष्टिकोण अपनाया जाता है। आंकड़े बताते हैं कि मादा लिंग के जैविक लाभों को नकारात्मक दृष्टिकोण अपनाकर समाप्त कर दिया गया है। इसी कारण लड़के की तुलना में लड़की कुपोषण की अधिक शिकार है और उसकी मृत्यु–दर की औसत भी अधिक है।

कुछ समय पूर्व लैटिन अमेरिका में हुए सर्वेक्षण् से ज्ञात होता है कि यदि गर्भावस्था में लड़की को अच्छा पोषण दिया जाए और जन्म से वह कुपोषण की शिकार है तो ऐसे पोषण से अधिक लाभ नहीं होता। भारत में आमतौर पर गर्भवती या सद्यःप्रसूता माँ के खाने–पीने का तो विशेष ध्यान रखा जाता है पर जन्म लेनेवाली लड़की के पोषण के प्रति उपेक्षा ही दर्शायी जाती है प्रायः समाज की मानसिकता यह होती है कि लड़की नहीं मुसीबत या डिग्री पैदा हुई है। एक रोचक किस्सा एक महिला ने मुझे सुनाया, जिसने मुझे हँसाया नहीं बल्कि लगा पैरों तले जमीन खिसक गयी हो। हुआ यह है कि एक स्त्री ने बड़े दुःख के साथ यह खबर दी कि उसके भाई के यहां चार लाख की चोरी हो गयी है। लोग जब पूछताछ के लिए गए तो पता चला भाई के घर चोरी नहीं हुई है बल्कि वहां एक पुत्री ने जन्म लिया है। राजस्थान में लड़की होने पर कहा जाता है कि भाटा यानि पत्थर जन्मा है और दूसरी ओर लड़के के जन्म होने पर थाली बजाकर हर्ष प्रगट किया जाता है और सात गांवों को दावत का निमंत्रण भेजा जाता है।

आइए हम उन कारणों को पहचानें जिनके कारण लड़की के प्रति ऐसा भेदभाव बरता जाता है। हमारे समाज में प्रमुख समस्या है दहेज की जिसके कारण लड़की को भार समझा जाता है। माता पिता को लगता है कि लड़की न हुई गले में मुसीबत की गठरी बंध गई और दहेज भी मात्र विवाह के साथ समाप्त नहीं हो जाता, इसे तो सामाजिक मान्यताओं के कारण जीवन पर्यन्त ही लड़की को देना पड़ता है। बात उसी की पीढ़ी तक समाप्त नहीं होती लड़की तो क्या उसके बच्चों के जन्म मुंडन और उनके विवाह तक लड़की के माता पिता को इतना देना पड़ता है कि उनकी कमर टूट जाती है।



आंकड़े यह भी बताते हैं कि हमारे देश में महिलाओं की साक्षरता का प्रतिशत केवल 24.82 ही है जो पुरुषों के 45.89 प्रतिशत से लगभग आधा है। जब लड़की साक्षर नहीं तो उसका विकास कैसे होगा। स्कूली शिक्षा जहां प्राइमरी स्तर तक निःशुल्क है वहां भी ड्रॉप आउट का प्रतिशत बालिका वर्ग में अधिक है। कारण चाहे सामाजिक हो या कुछ और दस में से छः लड़कियाँ स्कूल जाने से वंचित रहती हैं। इसी कारण आज यह प्रश्न उठा है कि बालिका बोझ है या समाज के विकास में उसकी सक्रिय भागीदारी है। ऐसा कभी भी लड़के के बारे में नहीं उठाया जाता क्योंकि यह तो सबका दृढ़ विश्वास होता है कि लड़का तो है ही समाज का कर्णधार।

आइए अब हम आज के परिवेश में वस्तुस्थिति का अवलोकन करें। समाज का आधा अंग नारी है अतः समाज रूपी गाड़ी के दो पहियों में वह एक महत्वपूर्ण पहिया है। गाड़ी एक पहिये से नहीं चल सकती। हमारे समाज की कुछ रूढ़ियों में अतीत में बालिका के विकास के समुचित अवसर नहीं दिए और कभी धर्मग्रन्थों की, कभी नैतिकता की, कभी परंपरा की और कभी रीतिरिवाज़ों की दुहाई देकर उसका शोषण किया। किन्तु यथार्थ स्थिति यह है कि बालिका उस पौधे के समान है जिसे समुचित हवा, पानी, प्रकाश और खाद देने पर उसका विकास भी ठीक वैसा ही होता है जैसा एक बालक का होता है। हमारे साथ विडंबना यह है कि हम बातें तो प्रगतिशीलता की करते हैं, पर अभी भी बालिकाओं के विषय में हमारी प्रवृत्ति इतनी आदिम है कि लगता है कि अगर ऐसे ही चलता रहा तो वह दिन दूर नहीं जबकि लड़की भी एक दुर्लभ प्राणी बन जाएगी। आज भी हमारे प्रदेश राजस्थान में ऐसे गांव मौजूद हैं जहां पिछले सत्तर वर्षों से कोई बारात ही नहीं आई क्योंकि उस अभिशप्त गांव में जन्मने वाली हर लड़की को जन्म के साथ ही खाट के पाये के नीचे दबाकर मार दिया गया। गुजरात के सुदूर कस्बों और ग्रामीण अंचलों में आज भी लड़की को दूध में डूबो कर मार दिया जाता है और कैसी विचित्र बात है कि लड़की पर यह अत्याचार बहुधा उसकी जननी ही करती है। मनुष्य की हत्या करने पर कानून में सजा

का प्रावधान देकर जन्म लेने के पहले और बाद में मरने के बाद हुई इस जीव हत्या के विषय में कानून ने भी मुँह सी रखा है और समाज ने भी।

हैरानी की बात तो यह है कि ईसा के पांच शताब्दी पूर्व प्लेटो ने कहा था कि लैगिंग अंतर के अलावा लड़के और लड़की में कोई अंतर नहीं है। पुरुष एक सबल नारी है और नारी एक दुर्बल पुरुष और यह मात्र उनका लिंगगत अंतर है। बाकि दोनों बिल्कुल समान हैं। तब से आज तक लगभग ढाई हज़ार वर्ष बीत गए हैं और आज भी हम ऐसी मानसिकता लड़की के साथ रखते हैं। हम कहां जा रहे हैं ? जब हम इस बीसवीं शताब्दी में रूपकंवर जैसी कोमल बालिका को जबरदस्ती सती कर रहे है और दुहाई दे रहे हैं धर्म की। क्यों नहीं हम सती की चिता पर एक बालक की आहुति देते हैं? क्यों इतने बर्बर हैं हम ? क्या बालिका किसी और धातु की बनी हुई है। आज भी अक्षय तृतीया के दिन शारदा एक्ट की धज्जियां उड़ाते हुए हजारों नन्हें जोड़ों को विवाह के उस पवित्र बंधन में बांध दिया जाता है जिसका ये अर्थ ही नहीं जानते। कई बार तो छः मास से भी छोटे बच्चे का विवाह करवा दिया जाता है विवाह की रस्म माता पिता बच्चे को गोद में उठाकर पूरी कर लेते हैं।

समाज का शहरी क्षेत्र हो या ग्रामीण बालिका किसी भी स्तर पर समाज के लिए बोझ नहीं है। एक बालक की तुलना में वह हर दृष्टि से अधिक सक्रिय होकर अपनी भूमिका निभाती है। आज ऐसे कई परिवार मिल जाएंगे जहां लड़की अपने भाई या पिता के कंधे से कंधा मिलाकर परिवार की हर जिम्मेदारी में बराबरी का हिस्सा बंटा रही है और बहुधा यह पुरुष वर्ग से अधिक सक्षम भूमिका निभा रही है। आज तो प्रायः यही देखने में आ रहा है कि लड़की में उत्तरदायित्व की भावना लड़के से कहीं अधिक होती है और वह बड़ी सरलता से घर के भीतर व बाहर कार्य क्षेत्र में अपनी योग्यता का परिचय दे रही है। वह क्या नहीं है आज? वह डॉक्टर है, प्रशासनिक अफसर है, इंजीनियर है, पायलट है, पुलिस अफ़सर है, अध्यापिका है और हर क्षेत्र में उसने नए कीर्तिमान स्थापित किए हैं। अध्ययन का क्षेत्र हो या खेल का मैदान, ओलम्पियाड



जैसे गणित के पेचीदा सवाल हों या राइफ़लशूटिंग, आई.आई.टी. हो या पी.ई.टी. हो, कौनसा ऐसा क्षेत्र है जहां उसने अपने वर्चस्व की मुहर नहीं लगा रखी है? समाज की सबसे छोटी इकाई परिवार है। परिवार के संचालन में एक बालिका का जितना योगदान होता है उतना एक बालक का नहीं। यदि एक लड़की अध्ययनरत होती है, तब भी वह बचपन से ही घर के काम में माँ का हाथ बंटाती है। जबकि हमारे देश में एक प्रतिशत बालक भी घर के संचालन में योगदान नहीं देते। हमारी सामाजिक संरचना में लड़के को सिर्फ़ अधिकार दिए हैं और कर्तव्यों का सारा बोझ लड़की पर डाल दिया है। परिवार का वृहत्तर रूप है समाज। समाज के सक्रिय विकास में भी बालिका इसी प्रकार अपनी सक्रिय भूमिका निभाती है। ग्रामीण परिप्रेक्ष्य में भी महिला घर से लेकर खेती या मजदूरी के काम में पूरी तत्परता से जुटी रहती है। बच्चों का लालन–पालन करती है जबकि पुरुष वर्ग शाम होते ही शराब के ठेके पर जाकर नशे में धुत्त रहता है और दिन में भी उतना काम नहीं करता जितना उसकी पत्नी। यही नहीं वह अपने पुरुषोचित सामंती अधिकार का पालन करने के लिए बेरहमी से अपनी पत्नी को रूई की तरह धुनने से नहीं चूकता। आप इस देश के किसी भी गांव में चले आईए। हर जगह आपको यही स्थिति मिलेगी। तो हम स्वयं ही निर्णय ले सकते हैं कि बालिका बोझ है या समाज की कुशल संचालिका? गांवों में पर्दाप्रथा की आड़ में भी पुरुष वर्ग उसका भरपूर शोषण करता है। किसी महत्वपूर्ण निर्णय में उसे शामिल नहीं किया जाता जबकि वस्तुस्थिति यह है कि ग्रामीण विकास से संबंधित जितने भी सरकारी या स्वैच्छिक संगठनों के कार्यक्रम गांवों में चलाये जा रहे हैं, उनकी सफलता के पीछे स्त्रीवर्ग की ही सक्रिय भागीदारी है। पुरुषवर्ग तो अभी भी वहां बीड़ी ही फूंक रहा है या अपनी पत्नी की कमाई पर ऐश कर रहा है और विडम्बना यह है कि स्त्री को मजदूरी भी पुरुष के बराबर नहीं मिलती जबकि वह पुरुष से अधिक काम करती है।

दिसम्बर 1990 में कालीकट में संपन्न हुए भारत में महिला आंदोलन पर चतुर्थ राष्ट्रीय सम्मेलन में 2000 से भी अधिक महिलाओं ने

भाग लिया और ग्रामीण महिलाओं और बालिकाओं की भागीदारी शहरी महिलाओं से किसी भी प्रकार कम नहीं थी। अकेले राजस्थान के ग्रामीण अंचलों से सौ से अधिक महिलाओं ने सक्रिय भागीदारी निभाकर सबको आश्चर्यचकित कर दिया था।

जब इतनी सक्रिय भूमिका बालिका की समाज के विकास में हो रही है तब भी इसका शोषण हो रहा है इसको रोकने के लिए मेरे कुछ ठोस सुझाव हैं। संचार माध्यमों में नारी की रूढ़िवादी भूमिकाएं दिखाई जानी बंद होनी चाहिए। दूरदर्शन, चलचित्रों में आज भी उसकी देवी वाली छवि को उभारकर उसे त्याग की मूर्ति बताकर उससे ऐसी ही भूमिका की अपेक्षा की जाती है जिसमें वह पूर्णतः अस्तित्व विहीन हो। पुरुष के चरणों की दासी बनने में अपना परम सौभाग्य माने।

स्त्री के घरेलू कार्य को नगण्य माना जाता है जबकि विकसित देशों में तो घरेलू कार्य के लिए भी निश्चित वेतन निर्धारित करने की बात की जा रही है क्योंकि घरेलू कार्य को भी उत्पादक कार्य की श्रेणी में मान लिया गया है। हमारे देश में भी बालिका या स्त्री द्वारा किए गए घरेलू कार्य को भी बराबर का महत्व दिया जाना चाहिए।

शिक्षा द्वारा इस मानसिकता में परिवर्तन किया जाना चाहिए कि लड़की और लड़के में अंतर है। भ्रूण परीक्षण तत्काल बंद होने चाहिए ताकि लड़की जन्म लेने के पहले ही न मार दी जाए। दहेज संबंधी कानूनों का कठोरता से पालन किया जाना चाहिए। अभी तक हमारे देश में कानून मात्र धाराओं में उल्लिखित है इनका यथार्थ में पालन नहीं किया जाता।

इसके लिए महिला दिवस या महिलादशक या अन्य आयोजनों से अधिक नाम नहीं होना चाहिए क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय महिलादशक की समाप्ति के पश्चात किए गए मूल्यांकन से यह तथ्य सामने आया है कि महिलाओं के विकास के लिए चलाए गए विशेष कार्यक्रमों के माध्यम से महिलाओं की स्थिति में अत्यंत सीमित एवं नाममात्र का परिवर्तन आया



है। जब तक समाज की मानसिकता में परिवर्तन नहीं आएगा तब तक स्थिति वैसी ही रहेगी।

हमारा अंतिम उद्देश्य एक सक्रिय स्वस्थ और इक्कीसवीं शताब्दी की एक ऐसी बालिका का गठन करना है जो पारंपरिक सामाजिक भूमिका से न बंधी हो तथा जिसके पैरों में सामाजिक व सांस्कृतिक रूढ़ियों की बेड़ियां न पड़ी हों, जिनके कारण वह अपने व अपने समाज के बारे में पर्याप्त जानकारी प्राप्त नहीं कर पाती और न ही इनसे सम्बन्धित मामलों में अपने विचार व्यक्त कर पाती है। हमें ऐसी बालिका का स्वरूप निर्मित करना है जिसमें आत्मबोध और स्वाभिमान हो जो समाज में केवल उपभोक्ता के रूप में ही नहीं बल्कि उत्पादक के रूप में भी अपनी भूमिका निभाए। केवल निश्चित व्यक्ति के रूप में ही जिसका व्यक्तित्व न उभरे बल्कि जो सभी प्रकार के उन मानवोचित मूल्यों के प्रति चिंतित हो जिनसे उसे वंचित रखा जाता है। समान अधिकार प्राप्त सभी प्रकार के बंधनों से मुक्त तथा अपने भाग्य व स्वयं से संबंधित मामलों के संबंध में पूर्णाधिकार प्राप्त बालिका।

अतः मैं यह मान्यता रखना चाहूंगी कि यद्यपि समाज में विसंगतियाँ अभी विद्यमान हैं और बालिका का शोषण हर तरह से किया जा रहा है पर मंथन की प्रक्रिया भी आरम्भ हो चुकी है और वो दिन दूर नहीं जब वह कथन एक सरकारी प्रचार नहीं बल्कि मनोरम सत्य में परिणत हो जाएगा –

बेटी छुएगी आकाश
बस एक मौके की तलाश

# असमानता में जन्मी लड़की

अपनी क्षमता और ताकत को साकार रुप देने वाली एक सक्रिय, कुशल और आत्मविश्वासी महिला बनने के लिए किशोरियों का लालन–पालन, मान–मर्यादा और सुअवसर के माहौल में होना ज़रुरी है। साँस्कृतिक रीति–रिवाजों और मान्यताओं के कारण भारत में एक आम लड़की के लिए गरीबी से उपजे अभाव और तकलीफें और भी बढ़ जाती हैं। यही मान्यताएँ महिला की भूमिका का फैसला करती हैं, उसकी परिभाषा तय करती हैं और अक्सर उसको पुरुष के मुकाबले में तुच्छ ठहराती हैं।

समाज में महिला की स्थिति का अन्दाजा बालिका की स्थिति से लगाया जा सकता है। औरतों को जिदंगी की बेहतरीन मानी जाने वाली चीजों से वंचित रखा जाता है और यह सिलसिला बचपन से ही शुरु हो जाता है। इसलिए लड़कियों के लिए बेहतरीन चीजें गैरजरुरी समझी जाती हैं। उसे कम देखभाल और ध्यान का हकदार माना जाता है क्योंकि समाज में उसकी स्थिति निम्न स्तर की है। उसका बचपन घर के कामकाज में बीतता है। समाज उसके लिए जो छवि तैयार करता है वह गुलामी, मूल्यहीनता और निर्भरता की होती है। पहले बेटी, फिर बहन और बाद में पत्नी और माँ के रुप में वह आज्ञाकारी बनना और चुपचाप हर बात मान लेना, सह लेना सीख लेती है। उसका विवाह जबरन कम उम्र में ही करके उसे बचपन से वंचित कर दिया जाता है और उसे बच्चे भी जल्दी–जल्दी पैदा करने पड़ते हैं। इसका किशोर लड़कियों के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है।

समाज के इस अमंगल वातारण में पैदा हुई लड़की को एक ऐसा बोझ माना जाता है जो परिवार की आमदनी में कभी कोई योगदान नहीं देगी और शादी के समय दहेज के रुप में परिवार की सम्पत्ति का एक बड़ा हिस्सा अपने साथ ले जाएगी। लड़की को लागत का ठोस आधार नहीं माना जाता और कम संसाधनों को आमतौर पर लड़कों पर



ही खर्च कर दिया जाता है। माना जाता है कि माता–पिता के इहलोक व परलोक सुधारने के लिए बेटे जरुरी हैं, बेटे सामाजिक सुरक्षा के आश्वासन होते हैं। बेटे अपने बेटों के माध्यम से वंश का नाम बनाए रखते हैं। बेटे लगाई गई पूंजी से होने वाले लाभ के प्रतीक होते हैं। बेटे की चाहत माँ के मन में इतना गहरा घर किए बैठी है कि वह न सिर्फ बेटे के जन्म की प्रार्थना करती है, वह पुत्री जन्म के भय से सहमी भी रहती है–

हवा के झोंके से जैसे तुरियां पत्ता कांपा
तो मेरा मन भी कांपा
कहीं बेटी को जन्म न दे दूं

पुत्र जन्म पर दाई को अधिक इनाम देने का रिवाज है। पुत्र जन्म पर गा–बजा कर सबको खुशखबरी सुनाई जाती है लेकिन पुत्री जन्म पर आमतौर पर निराशा या फिर उदासी ही महसूस होती है। उत्तर भारत में लड़कियाँ यह दर्दभरा गाना गाती हैं:–

सुन, ओ सुख्मा, यह कैसी रीत है
बेटे के जन्म पर ढोल बजाए जाते हैं
और मेरे जन्म पर सिर्फ़ पीतल की एक थाली

कुपोषण और बीमारियों के कारण छोटी उम्र की लड़कियों की बड़ी संख्या में मृत्यु हो जाती है क्योंकि या तो उनका इलाज होता ही नहीं या फिर इलाज ठीक–ठाक नहीं होता है। लापरवाही या जानबूझ कर की गई अनदेखी के कारण ही कम लड़कियाँ जीवित रहती हैं। महिला हत्या जिसमें मादा शिशु हत्या और हाल ही में भ्रूण हत्या शामिल हो गई है, ये प्रसंग महिलाओं के अस्तित्व नकार व अवहेलना के भयानक चेहरे को दर्शाते हैं। भारत में शिशु हत्या को 1890 में अवैध घोषित कर दिया गया था फिर भी, देश के कुछ हिस्सों और सम्प्रदायों में अभी तक एक हद तक यह प्रथा जारी है। लिंग परीक्षण अजन्मे शिशु में आनुवांशिक असमान्यताओं का पता लगाने के लिए शुरु किया गया था। आज एमनीओसेन्टीसिस (वह परीक्षण जिससे बच्चे के लिंग की

जानकारी मिल जाती है) तकनीक विकसित हो चुकी है। माता–पिता भ्रष्ट डॉक्टरों की मदद के लिंग परीक्षण करवा कर मादा भ्रूण नष्ट करवाने लगे हैं। हर जाति और वर्ग के लोग आजकल जन्म से पहले लिंग–चुनाव करने लगे हैं। 1984 में केवल बम्बई शहर में ही 40,000 मादा भ्रूण नष्ट किए गए थे। महाराष्ट्र के लिंग आधारित भ्रूण हत्या पर पाबन्दी लगा दी है, अन्य राज्यों को भी ऐसे कदम उठाने चाहिए।

भारत में लड़कियों को शुरु से ही पुरुष प्रधान सिद्धान्तों और उससे उपजी स्थिति को स्वीकारने के लिए तैयार किया जाता है और इस तरह वे अनेक प्रकार के पूर्वाग्रहों की शिकार हो जाती हैं। लड़कियों और औरतों को सामाजिक और सैद्धान्तिक स्तर पर प्रश्न पूछने या अप्रत्यक्ष जुल्मों के प्रति विरोध करने के लिए अक्षम बनाया जाता है। भूमिका और व्यवहार का कोई विकल्प न होने स्थिति में उनके लिंग वर्ग पर पुरुष प्रधान सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्य थोपे जाते हैं। महिलाओं के प्रतिकूल जाने वाले मूल्यों को स्वयं औरतों को भी अपनाना पड़ता है और फिर इनका समर्थन करना होता है।

बेशक लापरवाही और कुप्रथाओं की शिकार लड़कियों के बारे में सही आंकड़ें उपलब्ध नहीं हैं। फिर भी यह तो सभी जानते हैं कि बड़ी संख्या में लड़कियों को बहुत कम उम्र में जबरदस्ती वेश्यावृत्ति की ओर ढकेला जाता है। कभी तो धर्म के नाम पर लड़कियों का शोषण किया जाता है। उदाहरण के लिए उत्तरी कर्नाटक में माँ–बाप गरीबी और अन्धविश्वास के दबाव में आकर अपनी 8–10 वर्ष की लड़कियों को देवी यैल्लमा को अर्पित कर देते हैं। यौवनारंभ के बाद धर्म विधि अनुसार इनका कौमार्य भंग किया जाता है। इन लड़कियों का शेष जीवन बड़े शहरों में बेहद अपमानजनक तरीके से बीतता है।

बालिका शिशु को न सिर्फ जिन्दा रहने का हक है बल्कि उसे कुपोषण, अज्ञान, बीमारी और गरीबी से भी बचे रहने का हक है। जब तक लड़कियों को स्वास्थ्य, पोषण और शिक्षा नीतियों में प्राथमिकता नहीं दी जाती, तब तक सभी के लिए स्वास्थ्य, सभी के लिए प्राथमिक



शिक्षा,न्याय और एक समतावादी सामाजिक व्यवस्था केवल शब्दाडम्बर और सुनहरे सपने ही रहेंगे।

शिक्षा ही वह रामबाण है जिसके माध्यम से लड़कियाँ और औरतें सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया शुरू कर सकती हैं। शिक्षा एक ऐसे मध्यस्थ की भूमिका निभा सकती है जो लिंग भेद को समाप्त करे और लड़कियों में (लड़कों में भी) विवेकपूर्ण सामाजिक चेतना जगाएं। शिक्षा की इस भूमिका को तभी न्यायसंगत माना जा सकता है अगर इससे लड़कियों को किसी शिल्प या हुनर में प्रशिक्षण दिया जाए तथा उन्हें आत्मनिर्भरता के लिए प्रोत्साहित किया जाए ताकि वे अपने निम्न स्तर से ऊपर उठ सकें। इस तरह बेशक उन्हें स्कूल में दाखिला करवाना बहुत जरुरी है लेकिन शिक्षा के माध्यम से उन्हें सामाजिक स्तर पर शक्तिशाली बनाना भी उतना ही महत्वपूर्ण हैं।

हमारी आधी आबादी को सदियों से सुविधाओं से वंचित रखा गया है। आज युवा हो रही लड़कियों को इस वंचन से बचाया जा सकता है। लड़कियों को नकारते सांस्कृतिक मूल्यों और संस्थानों को बदलने के लिए एक व्यापक जन आन्दोलन सक्रिय रुप से चलना जरुरी है। इस कोशिश को सही दिशा देने के लिए ईमानदार प्रयास, सामाजिक प्रतिबद्धता और राजनैतिक इच्छा की जरुरत है। हमें आज ही काम शुरु करना है। अब हम चुपचाप पीढ़ी–दर–पीढ़ी अपनी बेटियों को शारीरिक, बौद्धिक और सामाजिक स्तर पर दायवंचित रहते बालिग होते नहीं देख सकते हैं।

# मानवाधिकार चेतना में स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका व योगदान

सबसे पहले हम मानवाधिकार शब्द को समझना चाहेंगे। मानवाधिकार की न तो कोई सर्वसम्मत परिभाषा है और न कोई व्याख्या। अतः मानवाधिकारों की कोई अन्तिम सूची नहीं बनाई जा सकती है। संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्यों ने 10 दिसंबर 1945 को आम सहमति से एक सूची तैयार की जिसे 'सार्वभौम मानवाधिकार' नाम दिया गया। आज मानवाधिकार शब्द का प्रयोग इसी संदर्भ में होता है।

इस घोषणा में प्रस्तावना के अतिरिक्त 30 अनुच्छेद हैं जिनमें मानव समाज के प्रत्येक सदस्य के अधिकारों का जिक्र है। प्रस्तावना में स्पष्ट कहा गया है कि प्रत्येक मनुष्य प्रतिष्ठा में बराबर है और प्रत्येक व्यक्ति के कुछ अहरणीय अधिकार हैं। प्रस्तावना में यह भी कहा गया है कि यदि अत्याचार से मुक्ति पाने के किसी अन्य उपाय के अभाव में मनुष्य को विद्रोह के लिए बाध्य नहीं करना है तो कानून के द्वारा उसके मानवाधिकारों को सुरक्षित करना होगा। अर्थात् अंतिम उपाय के रूप में विद्रोह करना भी व्यक्ति का मानवाधिकार है।

मानवाधिकार के दो पहलू हैं – राजनैतिक, नागरिक अधिकार और आर्थिक–सामाजिक सांस्कृतिक अधिकार । पहली श्रेणी में जीवन, व्यक्तिगत आज़ादी, घूमने–फिरने की आज़ादी तथा राज्य सरकार द्वारा कई प्रकार के हस्तक्षेपों से आज़ादी आदि आते हैं। दूसरी कोटि के अधिकारों में रोजगार का हक, शिक्षा, एक खास जीवन स्तर, कपड़ा, मकान का हक आदि आते हैं। साथ ही साथ जीवन की कई विषम परिस्थितियों (जैसे बीमारी, बुढ़ापा या शारीरिक अक्षमता आदि) में राज्य में सुरक्षा की गारंटी आदि का अधिकार भी इसमें शामिल है।

मानवाधिकारों की घोषणा और तीस अनुच्छेदों को यदि प्रत्येक राष्ट्र कानूनी जामा पहना देता तो इन अधिकारों को व्यावहारिक रूप में



लागू किया जा सकता था किन्तु मानवाधिकार घोषणा के बाद के पाँच दशकों का इतिहास साक्षी है कि तीसरी दुनियाँ के देशों में तो मानवाधिकारों का इतनी बर्बरता से उल्लंघन हुआ है कि ऐसा प्रतीत होता है कि हम इक्कीसवीं शताब्दी की ओर नहीं वरन् किसी आदि युग की ओर जा रहे हैं।

गत दस वर्षों से मेरा संबंध महिला समूह अजमेर नामक स्वयंसेवी संगठन से है व तीन वर्षों से पी.यू.सी.एल. से। अतः मैं अपने अनुभव के आधार पर कुछ केस स्टडीज़ प्रस्तुत करना चाहूँगी जिनसे स्वयंसेवी संगठनों की मानव अधिकारों के प्रति भूमिका व योगदान स्पष्ट हो सके।

जब संयुक्त राष्ट्र संघ ने आठवें दशक के प्रारंभ में महिला मुद्दों पर गंभीरता से विचार करना प्रारंभ किया तो इसकी प्रतिक्रिया भारत में भी हुई और आठवें दशक के अंत तक देश में महिला आन्दोलन व्यापक रूप से सक्रिय हो गया। कई स्वयंसेवी संगठन दिल्ली, बंबई व देश के कोने–कोने में बन गए जिन्होंने स्त्रियों को अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ने के मानवाधिकार के प्रति जागरूक किया। महिलाएँ जो सामन्ती सामाजिक व्यवस्था के बंधनों में जकड़ कर अपने अस्तित्व को ही भूल चुकी थीं धीरे–धीरे सशक्तिकरण की ओर उन्मुख हुईं।

महिला समूह में गत एक दशक से जो केस आए हैं उनसे स्पष्ट है कि हमारे नगर की शोषित व प्रताड़ित नारी में भी आत्मविश्वास जगा है और वह अपने अधिकारों को लड़ कर लेना भी सीख रही है।

1984 में पूरे देश में पारिवारिक न्यायालयों की स्थापना हुई ताकि घरेलू झगड़ों का निपटारा शीघ्र हो सके। महिला समूह की एक अनपढ़ सदस्या ने अपने व्यापारी पति के चुपचाप पुनर्विवाह करके उसके दो बच्चों और उसे उनके अधिकारों से वंचित करने के दुष्कृत्य को पहले की तरह आँसू बहाकर स्वीकार नहीं किया। उसने दृढ़ता से पारिवारिक न्यायालय में अपने हक की लम्बी लड़ाई जारी रखी और अन्ततः वह भरण भत्ता पाने में सफल हुई। यह चेतना उसे महिला समूह से प्राप्त

हुई। स्वयं महिला समूह के सदस्य कई बार उसका मनोबल बढ़ाने के लिए उसके साथ न्यायालय गए और आज वह अन्य महिलाओं को कानूनी सलाह ही नहीं देती बल्कि उनके साथ वकीलों के पास व न्यायालय जाती है ताकि उनमें अपने अधिकारों के प्रति चेतना जगे और वह "अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी" का ही पर्याय बनकर न रह जाए।

ऐसे कितने ही मामले महिला समूह में आए हैं जब प्रारंभ में प्रताड़ित महिला इतनी डरी हुई आती है कि बहुत जल्दी उसकी हिम्मत टूटने लगती है पर समूह के सदस्यों के द्वारा प्रेरणा व सहयोग प्रदान करने पर उसकी हिम्मत धीरे–धीरे बढ़ने लगती है। मैंने ऐसा अनुभव किया है कि साथ बैठकर अपनी समस्याओं को सुनने–सुनाने से भी महिला की ताकत और हिम्मत बढ़ती है। ससुराल में दहेज उत्पीड़न की शिकार एक युवती के परिवार वालों ने जब महिला समूह के सदस्यों से संपर्क किया और जब वे उसके ससुराल पहुँचे तो वह लगभग अधमरी अवस्था में थी। ससुराल से बाहर निकलकर अपनी जान बचाने की भी चेतना उसमें बाकी नहीं रह गयी थी। पर जब उसने लगभग पचास महिलाओं और पुलिसकर्मियों को देखा और उसे विश्वास हुआ कि वो अकेली नहीं है तो वह उस नर्क से बाहर निकली जहाँ विवाह के बाद से ही उसके मानव अधिकारों का निरंतर हनन हो रहा था। यहाँ तक कि उसके अपने पति ने उसका जबरदस्ती गर्भपात करवा दिया था और उसे दो समय का भोजन भी नहीं दिया जा रहा था। महिला समूह की प्रेरणा से आज वह युवती शिक्षा प्राप्त करके अपने पैरों पर खड़ी है और अनेक अन्य शोषित महिलाओं के लिए सक्रिय होकर काम कर रही है।

ससुराल वालों की कुमंत्रणा की शिकार एक विधवा को उसके पति के स्थान पर सरकारी नौकरी कदाचित न मिलती यदि नगर के महिला संगठन के लोगों ने बार बार सरकारी अधिकारियों से सम्पर्क करके उस महिला के अधिकार को दिलवाने में अग्रणी भूमिका न निभाई होती। वह विधवा महिला भी धीरे धीरे इतनी चेतना सम्पन्न हो गयी कि



स्वयं उसने अपने अधिकारों की इस लड़ाई में जुझारू भूमिका निभाई। अतः यह स्पष्ट है कि मानवाधिकार चेतना को जाग्रत करने की दिशा में स्वयंसेवी संगठन सचमुच कितनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अजमेर के निकट गांवों में काम कर रहे कुछ स्वैच्छिक संगठनों ने ग्रामीण महिलाओं में धीरे–धीरे इतना आत्मविश्वास जगाया कि उनमें से कुछ ने पर्दे से बाहर आकर चुनाव लड़कर सरपंच का पद भी प्राप्त किया और पुरुष सरपंचों से अधिक सक्षमता से कार्य किया। जिस निर्भीकता से आज ये ग्रामीण महिलाएँ थानों, न्यायालयों और अन्य प्रतिष्ठानों में जाकर अपने मानवाधिकारों की लड़ाई लड़ रही हैं वह अद्भुत है। ये महिलाएँ जंगल, जमीन और बांधों की लड़ाई भी लड़ रही हैं और पर्यावरण के अधिकार की माँग भी कर रही हैं।

जून 1999 में बंबई के एक स्वयंसेवी संगठन 'आवाज़े निस्वां' की एक कार्यशाला में जाने का मुझे अवसर मिला। मुस्लिम महिलाओं के इस संगठन ने इस प्रकार अपने हक के लिए जेहाद छेड़ा है कि वह काबिले तारीफ़ है। यही स्थिति बंबई की फ़ोरम अगेन्स्ट ऑप्रेशन ऑफ़ वीमन, दिल्ली के साक्षी, सबला, सहेली, जागोरी, शक्तिशालिनी, गुजराज के सहियर, राजस्थान के महिला अत्याचार विरोधी जन आंदोलन व मज़दूर किसान शक्ति संगठन की है। अनगिनत स्वयंसेवी संगठनों ने मानवाधिकार के प्रति उस वर्ग की चेतना जाग्रत की है जो अब तक सर्वहारा रहकर मात्र उत्पीड़न की व्यथा भोग रहा था। मज़दूर किसान शक्ति संगठन की श्रीमती अरूणा राय का सूचना का अधिकार का आंदोलन तो आज पूरे देश में अपनी पहचान बना चुका है। आउटलुक पत्रिका में भी इसकी चर्चा हुई है।

पी.यू.सी.एल. भी स्वर्गीय जयप्रकाश नारायण द्वारा स्थापित मानव अधिकारों के लिए कटिबद्ध एक स्वयंसेवी संगठन है जिसकी राष्ट्रव्यापी पहचान है। जहां भी मानव अधिकारों का हनन होता है वहां पी.यू.सी.एल. अपनी सक्रिय भूमिका निभाता है। हमारे अपने ही नगर में जब फरवरी 1998 में दरगाह क्षेत्र में सांप्रदायिक तनाव फैला और अनेक

निर्दोष लोगों को पुलिस की बर्बर यातना का शिकार होना पड़ा तो पी. यू.सी.एल. अजमेर इकाई ने वहां जाकर सभी पीड़ित लोगों से जानकारी ली और उन्हें मुआवजा दिलवाने में पहल की। यही नहीं मानवाधिकार आयोग को भी पूरी घटना की जानकारी पी.यू.सी.एल. के माध्यम से ही प्राप्त हुई। लामाना गांव में जब दलित जाति के दूल्हे के घोड़ी पर बैठने के अधिकार को गांव के सवर्णों ने चुनौती दी तब भी पी.यू.सी.एल. के दल ने वहां का दौरा कर दोनों वर्गों के लोगों से बातचीत की और बीच का रास्ता सुझाया। हाल ही में नागफणि क्षेत्र में तारागढ़ के निवासियों को जब जबरदस्ती रातोंरात प्रशासन द्वारा बेघर कर दिया गया तब भी पी.यू.सी.एल. अजमेर इकाई ने प्रशासन व पीड़ित लोगों के साथ संपर्क किया और उनके पुनर्वास का प्रयास किया। लाडपुरा गांव में मात्र चौदह वर्ष की दलित जाति की किशोरी के निरंतर बलात्कार के परिणामस्वरूप पुत्र जन्म का समाचार अखबारों में पढ़ते ही पी.यू.सी.एल. का दल गांव जाकर पीड़िता के परिजनों एवं सरपंच से मिला और प्रशाासन से भी उस किशोरी को उसका मानवाधिकार दिलाने का प्रयास कर रहा है। इन अनेक घटनाओं से स्पष्ट है कि समाज के दलित व सर्वहारा वर्ग को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करने में इन स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका का योगदान असंदिग्ध है।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने समय समय पर प्रसंविदायें पारित करके मानव अधिकारों को स्थापित करने की चेष्टा की है पर क्योंकि प्रत्येक राष्ट्र संप्रभुतासंपन्न है अतः उसको इन प्रसंविदाओं को स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता । इसी कारण अनेक मानव अधिकार आज भी मात्र कागजी हैं।

भारतीय संविधान व न्याय व्यवस्था में कई मानव अधिकारों को सम्मिलित कर लिया गया है जो संख्या में पंद्रह से अधिक हैं। इसकी सूची देखने पर तो लगता है भारत के समान मानवाधिकारों का पोषक कोई भी देश नहीं है पर वास्तव में ये सभी अधिकार खोखले हैं और अपने देश में तो सुनियोजित ढंग से मानवाधिकारों का हनन होता है। निवाकर नज़रबन्दी कानून, मीसा, टाडा व राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम



कानूनों के अंतर्गत कितने ही निरपराध लोगों को जीने के अधिकार से ही वंचित कर दिया गया है। पुलिस मुठभेड़ में मौत व पुलिस की दमनकारी नीतियां सरकारी सहमति से लागू होती हैं पर यहाँ दोषी अधिकारी को कोई सजा नहीं दी जाती।

सन् 1993 में भारतीय संसद ने राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का गठन किया जिसे बहुत सीमित अधिकार दिये गये फिर भी वह कई दृष्टिकोणों से उपयोगी सिद्ध हुआ है। अब देश के नागरिकों को अपने मानवाधिकारों के हनन के मामलों को उठाने के लिए एक सशक्त व निष्पक्ष संगठन प्राप्त हुआ है जो उनकी आवाज़ को सुन सकता है। मानवाधिकार के क्षेत्र में कार्यरत देश के कुछ प्रमुख स्वयंसेवी संगठन हैं – पी.यू.सी.एल., जनतंत्र समाज, पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स, एसोसिएशन फॉर प्रोटेक्शन ऑफ डेमोक्रेटिक राइट्स तथा कमिटी फॉर प्रोटेक्शन ऑफ डेमोक्रैटिक राइट्स। अमनेस्टी इंटरनेशनल अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सबसे बड़ा मानवाधिकार संगठन है।

ऐसा नहीं है कि इन स्वयंसेवी संगठनों के अस्तित्व में आ जाने से मानव अधिकारों का हनन समाप्त हो गया है। अपने ही देश में जिस प्रकार की लोमहर्षक घटनाओं से समाचार पत्र रोज़ भरे रहते हैं उससे स्पष्ट होता है कि प्रत्येक स्तर पर मानव अधिकारों का प्रतिदिन हनन हो रहा है। पर यह निर्विवाद है कि ये स्वयंसेवी संगठन जिस प्रकार से दलितों, पीड़ितों व शोषितों को उनकी मानवाधिकार चेतना के प्रति जाग्रत कर रहे हैं उससे देश में एक नई क्रान्ति का सूत्रपात हो रहा है और आम आदमी भी अपने हक की लड़ाई लड़ने के लिए कटिबद्ध होकर संगठित हो रहा है। काली सियाह रात के अंधेरे की प्रगाढ़ता मशालों की रोशनी से निश्चय ही कम होती है और भोर की लालिमा को निकट लाती है। अतः हमें किसी कवि के शब्दों में यही कहना पड़ेगा :–

मशालें लेकर चलना जब तक रात बाकी है
संभल कर हर कदम रखना जब तक रात बाकी है

# कौमी एकता

आज हम एक अत्यंत विडम्बनापूर्ण वातावरण में जी रहे हैं। रोज समाचारपत्र उठाने पर हमें जहां एक ओर पंजाब में सांप्रदायिक दंगों के समाचार मिलते हैं तो दूसरी ओर दिवराला के सती कांड के पक्ष और विपक्ष में लंबे–चौड़े वक्तव्य पढ़ने को मिलते हैं। सत्य तो यह है कि इतिहास स्वयं को दुहराता है क्योंकि लोग वैसी ही गलतियां दुबारा करते हैं। दुर्भाग्यवश हम उस सीख को भूल से गए हैं जो इतिहास हमें सदियों से बार–बार देता रहा है। पंजाब, कर्नाटक और गोवा में हाल की घटनाओं से ये बात स्पष्ट हो गई है कि हम बारुद के एक ऐसे ढेर पर बैठे हैं जिसे भड़काने के लिए एक हल्की सी चिंगारी ही काफी है।

एक ओर हम इक्कीसवीं सदी में जाने की बात जोर शोर से करते हैं, कंप्यूटर टैक्नोलोजी की माँग करते हैं और दूसरी ओर हमारे भाई–बंधु जयपुर की चौड़ी सड़कों पर हाथों में नंगी तलवारें लिए सती को महिमामंडित करते हैं। अपने सच्चा राजपूत होने का दावा करते हुए ऐसी प्रथाओं को परंपरा से जोड़ते हैं और कौमी एकता को मखौल बना देते हैं। आज ही के एक समाचार के अनुसार धर्म रक्षा समिति के सदस्यों ने विचार किया कि आज जो हम कौमी एकता पर चिंतन करने के लिए यहां एकत्र हुए है यह वास्तव में आज के संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक है क्योंकि आज हमें बार–बार अपने अंदर झांकना है और अपने आप से प्रश्न करना है कि एक स्वतंत्र राष्ट्र के स्वतंत्रता के चालीस वर्ष बाद भी कौमी एकता का प्रश्न क्यों राष्ट्र के बुद्धिजीवियों को व्यथित किए हुए है। यदि हम इतिहास की ओर दृष्टिपात करें तो पाएंगे कि भारत में समाज को सुचारू रूप से चलाने के चार वर्णों में बांटा गया था और वर्ण का आधार जन्मगत नहीं कर्मगत था। जो समाज का बुद्धिजीवी वर्ग था व अध्ययन–अध्यापन से सम्बद्ध था वह ब्राह्मण कहलाया। समाज की रक्षा के लिए समृद्ध वर्ण क्षत्रिय कहलाया। वाणिज्य की जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने वाला वर्ग वैश्य कहलाया व चौथा वर्ग शूद्र कहलाया। इस विभाजन में ऊँच–नीच का कहीं नाम भी नहीं था पर धीर–धीरे स्वार्थ सर्वोपरि हो गया।



भारत में तो अनेक संस्कृतियां आईं और भारतीय संस्कृति में ऐसे घुलमिल गई कि आज यह ज्ञात करना कठिन है कि कौन आर्य है और कौन द्रविड़, कौन शक, कौन हूण और कौन मंगोल। विविधता में एकता सदा हमारा जातीय गुण रहा। यहां तक कि इस्लाम का प्रवेश भी भारतीयों में सांप्रदायिक मतभेद नहीं ला सका क्योंकि तब भी सूफी संतों और भक्तिकाल के महान संतों ने हिंदू–मुस्लिम एकता का नारा बुलंद किया था। हमारे देश में तो सांप्रदायिकता अंग्रेजों की कुचाल थी, जिनकी नीति ही हमेशा 'फूट डालो और राज्य करो' की रही। वह हमारा दुर्भाग्य था कि अंग्रेजों की साम्राज्यवादी कुचालें हमारी सांस्कृतिक एकता को छिन्नभिन्न करने में सफल हो गईं और देश धर्म के आधार पर दो टुकड़ों में बंट गया। हम यह भूल गए कि आज़ादी की लड़ाई ही हमने बहादुरशाह ज़फर के नेतृत्व में प्रारंभ की थी जो मुसलमान थे पर हर भारतवासी हिंदू या मुसलमान ने उन्हें अपना ही माना। गांधीजी, नेहरूजी तथा हमारे राष्ट्रीय नेता सांप्रदायिकता के घोर खिलाफ थे और इसी कारण उन्होंने हमारे संविधान में भारत में लोकतंत्र के विकास के लिए धर्मनिरपेक्षता को एक मूल आधार के रुप में स्वीकार किया।

किन्तु इसके बाद का इतिहास हमारे सामने है। इस संदर्भ में यह स्पष्ट कर दूं कि सांप्रदायिकता और धर्म एक नहीं है। सांप्रदायिकता को हम धर्मान्धता कह सकते हैं, यह वह ज़हर है जो संकीर्ण धार्मिकता को व्यक्ति के व्यक्तित्व की पहचान बना देता है और एक व्यक्ति को दूसरे के धर्म के प्रति घोर असहिष्णु बना देता है। धीरे–धीरे यह ज़हर इतना फैल जाता है कि व्यक्ति को व्यक्ति से धर्म के नाम पर इतनी दुश्मनी हो जाती है कि वो एक दूसरे के खून के प्यासे बन जाते हैं। धर्मनिरपेक्षता को ही सही तरह से नहीं समझा गया है। इसका अर्थ धर्म का विरोध नहीं है बल्कि सब धर्मो के प्रति सद्भाव व धार्मिक सहिष्णुता है। गांधीजी, नेहरूजी, मौलाना आजाद और बादशाह खान हमारे समय के धर्मनिरपेक्षता के ज्वलंत उदाहरण रहे हैं।

हमारे महान संत कवि कबीर ने कौमी एकता के लिए विभिन्न

संप्रदायों में एकता का शंखनाद फूंकते हुए यह मूलमंत्र दिया था

जात पांत पूछे नहीं कोई
हरि को भजे सो हरि का होई

कबीर ने हिंदू और मुसलमान दोनों को एक ही ईश्वर की संतान मानते हुए कहा था

अला एकै नूरे सभै उपजाया को ब्राहमण को खुदा से

और वे सांप्रदायिक विद्वेष भड़काने वालों से यह पूछना नहीं भूले थे

जे तू तुरक तुरकानि जाया भीतर खतना क्यों न कराया
जे तू ब्रामन ब्रामनि जाया आन बाट नहीं बाहर आया

इसी प्रकार तुलसी जो हमारी संस्कृति के महान रक्षक थे जातपाँत में जरा भी विश्वास नहीं रखते थे। अपने को कुलीन कहने वाले समाज के वर्ग ने जब उनकी जाति को लेकर उनसे प्रश्न किए तो उनका दो टूक जवाब था– धूत कहो अवधूत कहौ रजपूत जुलहा कहौ सोई तुलसीसरनाम गुलाम है राम कौ जाकौ रचेसो कहै कहु ओऊ।

आज आवश्यकता यह देखने की है कि इस घृणा व संदेह के वातावरण को हम सहज स्नेह में कैसे बदल दें। वरना आज दुबारा हम चालीस वर्ष बाद अपने ही देश में शरणार्थी बन रहे हैं। पंजाब में जो रोज घट रहा है वो हमारे अस्तित्व को हिला देने के लिए काफी है। हमारे ही देश में ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती, गुरूनानक, शंकराचार्य, बुद्ध व महावीर ने सद्भाव फैलाया था, फिर क्या कारण है कि आज हम इन छोटे–छोटे मतभेदों को लेकर एक दूसरे का अस्तित्व ही लील जाना चाहते हैं।

इस कौमी एकता के लिए हमें कुछ करना होगा। पहली बात तो ये है कि हमें अपनी मानसिकता में आमूलचूल परिवर्तन करना होगा। हमारी संस्कृति में विविधता के अलग–अलग इंद्रधनुषी रंग रहें पर कोई भी रंग घृणा का न हो। इतने विकसित होने पर भी हम सबसे पहले व्यक्ति की जाति या धर्म पूछते हैं। आजादी के बाद चंद स्वार्थी तत्वों ने



ही राजनीति को जाति वर्ग से जोड़ दिया था और लोगों में सांप्रदायिक भावनाएं भरकर वोट कमाए थे पर यह सरासर भावनात्मक शोषण (emotional blackmailing) है। हमें ऐसे लोगों को प्रश्रय नहीं देना चाहिए जो धर्म के आधार पर हममें फूट डालकर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं।

यह भी कहा जा सकता है कि कड़े कानून बनाने चाहिए पर इतने कानून हमारे यहां बन चुके हैं, धर्मनिरपेक्षता तो हमारे संविधान में है फिर क्यों नहीं हम इस पर अमल करते। यदि कानून से ही सुधार होता तो सती प्रथा, दहेज प्रथा जैसी कुरीतियां युगों पहले ही समाप्त हो जातीं। आवश्यकता हृदय परिवर्तन की है। हम तो विज्ञान के युग में जी रहे हैं और अच्छी तरह जानते हैं कि हर मानव की संरचना बिल्कुल एक सी है चाहे वह किसी भी धर्म का क्यों न हो। कौमी एकता स्थापित करने के लिए हम कुछ और भी कदम उठा सकते हैं। हम बच्चों की शिक्षा के पाठ्यक्रम में भारतीय स्वाधीनता संग्राम के इतिहास को सही तरह से चित्रित करें और हमारे महान नेताओं के कौमी एकता संबंधी विचारों पर प्रकाश डालें। सांप्रदायिक विद्वेष को गैर राष्ट्रीय व खतरनाक बताते हुए इसका खुले शब्दों में विरोध करें। सांप्रदायिक कट्टरता से संबंधित प्रचार को बिल्कुल बंद करें। अंतर्राज्य व राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय एकता समिति का गठन करें व इसे सकिय बनाएं।

प्रेस भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। साप्रंदायिकता को बढ़ावा देने वाली घटनाओं का प्रेस द्वारा पूर्ण बहिष्कार किया जा सकता है।

चार माध्यमों जैसे सिनेमा, दूरदर्शन, समाचारपत्र द्वारा भारतीय संस्कृति की मूलभूत एकता का विभिन्न रंगारंग कार्यक्रमों द्वारा बार–बार प्रचार किया जाए ताकि एकता की भावना हमारे हृदयों में दृढ़ता से स्थापित हो जाए। हर शहर, हर ग्राम में सर्व–धर्म मैत्री संघों की स्थापना हो और वे समय–समय पर मिलकर सांप्रदायिक सद्भावना बनाए रखें व अपने–अपने धर्मों के महान संतों की प्रेममय वाणी का संदेश प्रसारित करें।

इस दिशा में शिक्षक वर्ग एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। वे इस प्रकार से अपने विद्यार्थियों को शिक्षित करें कि उनके मस्तिष्क से सांप्रदायिकता का भाव बिल्कुल विलुप्त हो जाए। डॉ. हरिवंशराय बच्चन की मान्यता तो यह है कि फॉर्म में से नाम के आगे जाति का कॉलम बिल्कुल निकाल दिया जाए और लोग स्वयं भी अपने नाम के बाद जातिसूचक सरनेम लगाना छोड़ दें। हमारे देश ने प्रगति की है। इन चार–पांच वर्षों में लगता है हम इक्कीसवीं नहीं 16वीं शताब्दी की ओर बढ़ रहे हैं। हमारे धर्मनिरपेक्ष संविधान की अवहेलना करते हुए हमारे महान नेता जब उद्घाटन करने जाते हैं तो धार्मिक अनुष्ठान करते हैं, जो हमारी धर्मनिरपेक्षता के विरुद्ध है। धर्म नितांत निजी है। उसका पब्लिक में प्रदर्शन गैरकानूनी होना चाहिए ताकि सांप्रदायिकता को बढ़ावा न मिले वर्ना हमारे यहां तो हाल यह है कि जब पुलिस का सिपाही सती स्थल पर व्यवस्था कायम करने जाता है तो पहले सती माता की जय बोलता है और फिर अगली कार्यवाही करता है। यदि समाज के सभी अंगों में शिक्षा का सही ढंग से प्रचार किया जाए तो इस प्रकार की धर्मान्धता दूर हो सकती है।

आवश्यकता यह है कि हम अपनी भूमिका को पहचानें और प्रण करें कि हम अपने रोज के व्यवहार में संप्रदाय को स्थान नहीं देगें। नौकरी में भी अपने संप्रदाय की भर्ती की जाती है और जाति को मित्रता का आधार बनाया जाता है। यदि हम आपसी व्यवहार में कौमी एकता व्यावहारिक रुप से अपना लेंगे तो हमारी कई समस्याएं खुदबखुद मिट जाएंगी। अशोक, अकबर, गांधी इन महान व्यक्तियों ने सभी धर्मों को महत्व देते हुए सांप्रदायिक सद्भाव को पूरे विश्व में फैलाया था तो इन्हीं की संतान होने के नाते हमें तो आगे बढ़ना चाहिए और अपने भारतीय होने को गौरवपूर्ण स्वीकार करना चाहिए क्योंकि ऐसे समय में जबकि देश की स्थिरता तथा सुरक्षा को खतरा हो, हमें देश को कमज़ोर बनाने वाली सांप्रदायिक प्रवृत्तियों की एक स्वर में निंदा करनी चाहिए। सभी धर्म एक ही मार्ग को दिखाते हैं। हिन्दू धर्म ने 'वसुधैव कुटुम्बकम' की



अवधारणा को स्वीकार किया था तो पैगम्बर मुहम्मद ने कहा 'सारा संसार एक ऐसी खूबसूरत मस्जिद है जहां लोग एक ही काम के लिए इकट्ठा होते है।' कुरान की एक आयत में लिखा है 'आप मुंह पूरब की तरफ करें या पश्चिम की तरफ अल्लाह हर तरफ मौजूद है।' इसाई धर्म का कहना है कि जो शहर या घर बँट गया वह ज्यादा देर टिक नहीं सकता। वैदिक उक्ति है 'समानो मंत्र समिति समान समानम् मतम् सहचित्तम्।'

अतः हमें चाहिए कि हम एक सुंदर सद्भावना संजोयें, सद्भाव से जियें और भारत को फिर विश्व का नेता सिद्ध करें।

# राष्ट्रीय एकता और सांप्रदायिकता

हमारी भारतीय संस्कृति आज से नहीं वरन् युगों पूर्व से सांप्रदायिक सद्भाव से ओतप्रोत है। इतिहास से हम कुछ उदाहरण ले सकते हैं क्योंकि इतिहास बार–बार अपने आप को दोहराता है। यही इतिहास व ऐतिहासिक तथ्य हमें बताते हैं कि मथुरा–वृन्दावन क्षेत्र के मंदिरों के लिए एक हजार बीघा जमीन का दान सम्राट अकबर ने किया था और फतहपुर सीकरी में इबादतखाना बनवाया था। महाभारत का पहला फारसी अनुवाद भी अकबर ने ही फैजी कवि की देखरेख में करवाया था। वीर शिवाजी आध्यात्मिक प्रेरणा के लिए वेल्सी के बाबा चाकूत के पास जाते थे। तीर्थ स्थान अमरनाथ की खोज एक मुस्लिम गड़रिए ने की थी। मध्यकालीन बंगाल में कई ऐसे मुस्लिम कवि थे जिन्होंने वैष्णव गीत लिखे जैसे कि अलोल, सईद मुस्ताजा। प्रख्यात कृष्णभक्त कवि रसखान स्वयं पठान परिवार से थे जिन्होंने ''मानुस हो तो वही रसखानि जो बसौ ब्रज गोकुल गांव के ग्वालन'' में कृष्ण के प्रति पूर्ण समर्पण भाव दर्शाया। बंगाल के बोल गीत चैतन्य और सूफ़ी प्रभाव के मिश्रण से उपजे थे।

हमारी विरासत साझी रही है। हमारे साहित्य, संगीत, स्थापत्य, खानपान सभी पर इस मिश्रित संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट रुप से देखा जा सकता है। मध्यकालीन भक्ति आंदोलन सांप्रदायिक सद्भावना का जीता जागता उदाहरण है। गुरूनानक, तुलसी, सूर, कबीर, तुकाराम, दादू, मीरा रैदास ने जो सांस्कृतिक पुनर्जागरण प्रारंभ किया उसमें सांप्रदायिकता के लिए कहीं कोई स्थान ही नहीं था।

कबीर ने स्पष्ट उद्घोषणा की थी–

जे तू तुरकानि जाया भीतर खतना क्यों न कराया
जे तू बामन बामनि जाया आन बाट नहीं बाहर आया

क्योंकि वे मानते थे कि मनुष्य एक ही नूर से, एक ही प्रकाश से उत्पन्न हुआ है। वह न हिंदू है न मुस्लिम। लोक प्रचलित धारणा है कि राजरानी मीरा के गुरु रैदास थे जो जाति से चर्मकार थे किन्तु उनकी आध्यात्मिक उच्चता जाति व वर्णों से बहुत आगे थी। ऐसा था वह आंदोलन जिसमें जाति, धर्म, जन्म, वंश, कुल सब को छोड़कर मानव–मानव के बीच भाइचारे, प्रेम व सद्भावना की सलिला बहाई थी। सूफ़ी मत इसी सामंजस्य का जीता जागता उदाहरण है।



हमारे देश के स्वाधीनता संग्राम में सभी धर्मों व संप्रदायों की साझी शहादत थी– तिलक, गोखले, नेहरु, पाल, मौलाना आज़ाद, अशफाक उल्लाखां, आसफअली, दादाभाई नौरोजी, एनीबीसेंट, सरदार भगतसिंह, सरदार करतार सिंह को क्यों हम जाति व धर्म के दायरों में बांध सकते हैं? तो आज समय आ गया है कि हम रुकें व देखें कि हम किस ओर जा रहे हैं। समय इक्कीसवीं सदी की ओर जा रहा है। विज्ञान दूसरे ग्रहों की ओर प्रयाण कर रहा है और हम सांप्रदायिकता के शिकार होकर पता नहीं कौनसे युग की ओर लौटने का प्रयास कर रहे हैं? यदि यह फ़िरकापरस्ती हम पर हावी हो गई तो हमारी अब तक की सारी प्रगति पर प्रश्नचिन्ह लग जाएगा और हमने जो पाया है वो हम खो देगें।

सांप्रदायिक उन्माद क्यों भड़कता है? आइए हम इस प्रश्न पर विचार करें। अक्सर ऐसा होता है कि बात का बतंगड़ बना दिया जाता है और अफवाहों का जाल बिछा दिया जाता है। जो नहीं है उसे प्रचारित किया जाता है तो लोग अपना सन्तुलन खो बैठते हैं। आमतौर पर इंसान शांति और प्रेम से रहना चाहता है। कौन चाहता है कि उसका चैन मिट जाए, सुकून छिन जाए? वह घर के भीतर भी डरे और बाहर भी। साम्प्रदायिक तनाव भोगता है– आम आदमी, जो न हिंदू होता है न मुसलमान, न सिख न इसाई। वह सिर्फ़ इंसान होता है जो बिना किसी अपराध के सज़ा भोगता है। जब बच्चा जन्म लेता है तो उसे कहां पता होता है कि उसका धर्म क्या है, उसका संप्रदाय क्या है। वह तो एकदम निष्पाप होता है, किन्तु यदि कुम्हार चाहे तो कच्चे पात्र की गढ़न को

प्रभावित कर सकता है और पक जाने पर पात्र का आधार हमेशा के लिए स्थिर हो जाता है। इसी तरह जिस प्रकार की शिक्षा बच्चे को दी जाएगी उसी प्रकार का व्यक्तित्व होगा।

हमारे राष्ट्र में कश्मीर से कन्याकुमारी तक न केवल भौगोलिक एकता वरन् सांस्कृतिक एकता भी है और इतने बड़े राष्ट्र की समन्वित शक्ति से विश्व के अन्य राष्ट्रों का चिंतित होना स्वाभाविक है। अतः कुछ बाहरी तत्व हमारे देश को कमजोर बनाने के लिए सांप्रदायिकता का ज़हर फैलाते हैं ताकि हम आपस में लड़–भिड़ कर अपनी शक्ति जाया कर दें। किन्तु अब समय आ गया है कि हम इस साजिश को पहचान ले और अपनी ताकत को बिखरने नहीं दें। एक दूसरे को पहचान कर अपरिचय के दुबके भय को हम अपने भीतर से निकाल दें ताकि हम एक संगठित राष्ट्र के सच्चे नागरिक कहला सकें।



# मृत्यु से अमरत्व की ओर

(एक गाथा – खजूर रविवार से ईस्टर तक की)

आमतौर पर क्रिस्मस यानि बड़े दिन को ईसाइयों का सबसे महत्वपूर्ण पर्व माना जाता है किन्तु वास्तविकता यह है कि क्रिस्मस से अधिक महत्वपूर्ण पर्व मसीही समाज के लिए ईस्टर है। क्रिस्मस पर ईसा ने जन्म लिया था किन्तु वे चरम शिखर पर तब पहुंचे थे जब गुडफ्राइडे को सलीब पर अपना बलिदान देने के पश्चात वे ईस्टर के दिन पुनर्जीवित हो उठे थे।

खजूर रविवार या "पाम संडे" से अधिकांश लोग अपरिचित हैं किन्तु यह ईसा के जीवन का एक महत्वपूर्ण दिवस था और संसार में उनकी मानव–लीला के अंतिम सप्ताह का पहला दिन था। खजूर रविवार ईस्टर के ठीक एक सप्ताह पूर्व आता है। ईसा के समय में इजरायलवासी अपने पूर्वजों की मिश्र की दासता से मुक्ति की स्मृति में येरुसलेम में पास्क का उत्सव मनाया करते थे। हज़ारों यहूदी तीर्थयात्री इस उत्सव में भाग लेने येरुसलेम जाया करते थे। ईसा भी अपने शिष्यों के साथ इस उत्सव में भाग लेने येरुसलेम जा रहे थे। जब ईसा जतून नामक पहाड़ के समीप पहुंचे तो उन्होने अपने दो शिष्यों से कहा "सामने के गांव जाओ। वहां तुम्हें एक बंधी हुई गधी और बछड़ा मिलेगा। उसे खोलकर यहां ले आओ। यदि कोई तुमसे पूछे कि तुम उसे क्यों खोल रहे हो तो यह उत्तर देना कि प्रभु को इसकी जरुरत है।" (लूकसः 19–30,31)

धर्मग्रन्थों में मुक्तिदाता के विषय में बहुत पहले से ही भविष्यवाणी की गई थी कि वह इसी प्रकार येरूसलेम में प्रवेश करेगा। ईसा के शिष्य संत मत्ती ने अपने सुसमाचार में घटना की चर्चा करते हुए नबी जर्करया के इस कथन को उद्धृत किया है सियोन की पुत्री (येरूसलेम) से कहोः "देख, तेरे राजा तेरे पास आते हैं। वह विनम्र हैं। वह गधे पर, बछड़े पर लददू जानवर के बच्चे पर सवार हैं।" (मत्ती–21:4–5)

भारत में गधे की सवारी को हास्यास्पद माना जाता है किन्तु इजरायल की प्रथा के अनुसार जब कोई राजा युद्ध की इच्छा रखता था तो वह घोड़े की सवारी करता था और जब कोई राजा शान्ति की कामना करता था तो वह गधे की सवारी करता था। ईसा का यह कृत्य यह सिद्ध करता है कि वे युद्ध नहीं अपितु शान्ति के मसीहा थे। अपने मसीहा होने के परोक्ष संकेत ईसा ने कई बार अपने शिष्यों को दिए थे किन्तु उनके इस प्रकार से येरुसलेम में प्रवेश करने से उनके शिष्यों एवं अन्य अनुयायियों को यह पक्का विश्वास हो गया था कि ईसा ही वह मुक्तिदाता हैं जिनकी युगों से प्रतीक्षा की जा रही थी। उस समय तक ताजरस को पुनजीर्वित करने की घटना एवं अन्य अनेक चमत्कारों की कथाएं जनमानस में फैल चुकी थीं। खजूर रविवार के दिन गधे पर सवार होकर ईसा का येरूसलेम पहुंचना एक दिव्य संकेत था जिसके माध्यम से उन पर विश्वास करने वाले उन्हें सहज ही चीन्ह सकते थे।

ईसा की बढ़ती हुई लोकप्रियता ने प्रशासन और धार्मिक कठमुल्लओं के मन में अपार ईर्ष्या उत्पन्न कर दी थी। येरूसलेम के मन्दिर के अहाते में व्यापारियों ने जिस प्रकार बलि के पशुओं की खरीदफरोख्त का बाज़ार लगा रखा था, उसे देखकर ईसा ने क्रोधित होकर मन्दिर के अधिकारियों का खुला विरोध करके उन्हें सीधी चुनौती दे डाली थी । ईसा ने कहा था – "मेरा घर प्रार्थना का घर होगा, परन्तु तुम लोगों ने उसे लुटेरों का अड्डा बना दिया है।" (लूकसः 19–46) इस घटना के बाद ईसा के जीवन पर खतरे के बादल और मंडराने लगे थे।

जब ईसा येरूसलेम की ओर जा रहे थे उनका स्वागत एक राजा की भांति किया गया और उनके सम्मान में लोगों ने मार्ग में खजूर के पेड़ के पत्ते और कपड़े तक बिछा दिए। यह दृश्य देखकर ईसा के शिष्य आनंदविभोर होकर ईश्वर की स्तुति कर कहने लगे–"धन्य हैं वे जो प्रभु के नाम पर आते हैं।" येरूसलेम ईसा की सांसारिक यात्रा का अंतिम पड़ाव था अतः इस यात्रा को अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है।



खजूर रविवार को ईसाई समुदाय उसी महान दिवस की याद में मनाता है। इस दिन गिरजाघरों में विशेष प्रार्थना सभाएं होती है तथा पुरोहित लोगों को याद दिलाते हैं कि खजूर रविवार को किस प्रकार ईसा येरूसलेम में प्रविष्ट हुए थे और कैसे यह भव्य शाही यात्रा ईसा के जीवन की अंतिम यात्रा में परिवर्तित हो गई थी। यह एक ऐतिहासिक विडंबना थी कि जिन लोगों ने खजूर रविवार के दिन एक राजा के रूप में ईसा का येरूसलेम में स्वागत किया था, उन्हीं लोगों ने मात्र पांच दिन बाद ईसा को सलीब पर चढ़वा कर उनकी जीवनलीला का अंत करवा दिया।

इस दिन गिरजाघरों में बाईबिल के उन अंशों का पाठ किया जाता है जो खजूर रविवार से संबंधित होता है। हाथों में खजूर के पत्ते लेकर लोग गिरजाघरों में एक जुलूस की शक्ल में उसी तरह प्रवेश करते हैं जिस तरह ईसा ने येरूसलेम में प्रवेश किया था। पहले इन पत्तों को पुरोहित की ओर से आशीष प्रदान की जाती है। इस समय ईसा की उसी यात्रा से संबंधित गीत गाए जातें हैं और प्रार्थना के माध्यम से ईसा की अंतिम यात्रा की समस्त यातना का पुनःस्मरण किया जाता है।

खजूर रविवार के दिन ही ईसाई कैलेंडर के "पवित्र सप्ताह" का प्रारंभ होता है। चार दिन बाद पवित्र गुरूवार को विशेष प्रार्थना सभा के अंतर्गत पुरोहित बारह व्यक्तियों के पैर धोकर अंतिम भोज के समय ईसा द्वारा उनके बारह शिष्यों के पैर धोने की घटना की प्रतीकात्मक पुनरावृत्ति करते हैं। अगले दिन मानव इतिहास के सबसे दारूण दिन गुडफ्राइडे को ईसा के बलिदान दिवस के रूप में मनाया जाता है। इस दिन की प्रार्थनासभा बहुत लंबी होती है। अपना सलीब ढोते समय तीन बार ईसा गिरे थे व कुल मिलाकर चौदह महत्वपूर्ण घटनाएं उस समय घटी थीं जिनकी स्मृति में इस दिन गिरजों में चौदह स्थानों पर रूक–रूक कर पुरोहित प्रार्थना करते हैं। ईसा की मृत्यु की घोषणा समस्त ईसाई समुदाय को शोक के सागर में डुबो देती है। यह शोक

का वातावरण रविवार को आनंदोत्सव में परिणत होता है, ईस्टर अर्थात ईसा के पुनः जी उठने की घोषणा के साथ। शनिवार की मध्यरात्रि को गिरजे में क्रिस्मस के समान ही विशेष प्रार्थनासभा होती है और ईसाई समुदाय हर्षोल्लास से ईस्टर का पर्व मनाता है। जिस प्रकार क्रिस्मस पर केक तथा अन्य व्यंजन बनाए जाते हैं उसी प्रकार ईस्टर पर भी बनाए जाते हैं और "ईस्टर के अंडे" के नाम अंडे के आकार की मिठाई एक दूसरे को भेंट रूप में दी जाती है। अंडा अर्थात नवजीवन–क्योंकि ईस्टर नए जीवन, नई आशा का पर्व है।

खजूर रविवार के दिन जिन खजूर के पत्तों को आशीष प्रदान की जाती है उन्हें सुखाकर अगले वर्ष जलाया जाता है और उनकी भस्म"राख बुधवार" या "ऐश वैडनेस्डे" के दिन पुरोहित द्वारा ईसाईयों के माथे पर यह कहकर लगाई जाती है– "तुम मिट्टी से बने हो ओर मिट्टी में ही विलीन हो जाओगे।" राख बुधवार चालीस दिन के शोक का पहला दिन होता है जिसकी चरम परिणति खजूर रविवार व गुडफ्राईडे को होती है किन्तु हर काली रात्रि के पश्चात जिस प्रकार सूर्योदय होता है उसी प्रकार मिट्टी से बने इस मानव जीवन को अमरत्व का संदेश देने कोई मसीहा आता है, सूली पर चढ़ा दिया जाता है, फिर जी उठता है ताकि मानव की आस्था बनी रहे, उसका विश्वास बना रहे और मृत्यु से अमरत्व की ओर प्रयाण की उसकी चिरसंचित अभिलाषा बनी रहे।



# गुडफ्राईडे

आज हम विश्व के सबसे बड़े बलिदान दिवस पर चर्चा करने जा रहे हैं जिसे गुडफ्राईडे कहा जाता है। गुडफ्राइडे अर्थात अच्छा या पवित्र शुक्रवार। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं कि जिसे हम अपना मसीहा मानें, अपना पथप्रदर्शक व गुरू माने या अपना मुक्तिदाता मानें उसकी मृत्यु को एक पर्व की भांति मनाएं? यह तो आप सभी जानते हैं कि गुडफ्राइडे के दिन मानवता के रक्षक को, ईश्वर के पुत्र ईसा मसीहा को सलीब पर चढ़ा दिया गया था और इसी दिन उनका महाप्रयाण हुआ था पर इस दिन को हम अच्छा कैसे कह सकते हैं?

किन्तु इसके विषय में हम बाईबिल में संत योहन रचित सुसमाचार से जानकारी मिलती है। आपको प्रभु यीशु के अंतिम भोज के बारे में अवश्य जानकारी होगी। इसी सुप्रसिद्ध अंतिम भोज के समय ईसा ने अपने शिष्यों को जानकारी देते हुए कहा था कि "मेरा जाना अनिवार्य है क्योंकि जब तक मैं नहीं जाऊगां तब तक पवित्र आत्मा नहीं आ सकती।" यह वही पवित्र आत्मा है जो मनुष्य को आध्यात्मिक जीवन प्रदान करती है जिससे मानवजाति को अलौकिक आनंद, चिरशांति एवं मोक्ष प्राप्त होता है। तो गुडफ्राइडे का वास्तविक महत्व इस तथ्य में है कि ईसा केवल मरे ही नहीं बल्कि पुनर्जीवित हुए और ससीम देह से असीम देहधारी हो गए। ईसाई धर्म में जिस त्रयी–गॉड द फादर, गॉड द सन एवं गॉड होली स्पिरिट अर्थात् पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा का उल्लेख होता है उसमें तीसरा तत्व यानि पवित्र आत्मा बहुत महत्वपूर्ण है। यदि ईसा गुडफ्राइडे के दिन अपना बलिदान न देते तो पवित्र आत्मा का आगमन कैसे होता? जब तक ईसा शरीर धारित थे, उनके अस्थि चर्ममय शरीर में पवित्र आत्मा का निवास था परन्तु अस्थि चर्ममय शरीर सीमित है अतः पवित्र आत्मा का प्रभाव भी सीमित रहता था। केवल वे ही मानव इस पवित्र आत्मा के नैकट्य का आनंद उठा सकते थे जो ईसा के संपर्क में आते थे। किन्तु ईसा की मृत्यु के तीसरे दिन जिसे ईस्टर कहा जाता है, वे पुनर्जीवित हुए। इस पुनरूत्थान के पश्चात

ईसा का पुनर्जीवित शरीर महिमान्वित एवं असीम था। बाईबिल के अनुसार द्वार बंद होने पर भी ईसा कहीं भी प्रवेश कर सकते थे। पुनरूत्थान के पश्चात् ईसा ने अपनी पवित्र आत्मा अपने प्रेरित शिष्यों को प्रदान की और इन शिष्यों के माध्यम से पवित्र आत्मा की भेंट पूरे संसार को प्राप्त हुई। ईसा के शिष्य संत योहन रचित सुसमाचार में पवित्र आत्मा वाले प्रसंग में स्पष्ट शब्दों में ईसा का कथन उदधृत हैं– ''यदि तुम मुझे प्यार करोगे और मेरी आज्ञाओं का पालन करोगे तो मैं पिता परमेश्वर से प्रार्थना करूंगा और वह तुम्हें एक दूसरा सहायक प्रदान करेगा जो सदा तुम्हारे साथ रहे । वह सत्य की आत्मा है। और यही पवित्र आत्मा है।''

आइए, अब हम उस इतिहास का अवलोकन करें जो गुडफ्राइडे के दिन घटा था और जिसे ईसा के प्रेरित शिष्यो संत मत्ती, संत मारकुस, संत लूकस और संत योहन ने शब्दबद्ध किया है। पवित्र बाईबिल से हमें ज्ञात होता है कि–उन दिनों येरूसलेम में प्रतिष्ठानपर्व मनाया जा रहा था। ईसा को यहूदियों ने घेर लिया और उनसे पूछा कि क्या वे मुक्तिदाता या मसीह हैं? ईसा के सकरात्मक उत्तर देने पर उन्होंने ईसा को मारने के लिए पत्थर उठाए। ईसा के प्रश्न करने पर उन्होंने कहा कि हम ईश– निंदा करने के लिए तुम्हें मार डालना चाहते हैं क्योंकि तुम मनुष्य होकर अपने को ईश्वर मानते हो। उन्होंने ईसा को गिरफ्तार भी करना चाहा पर ईसा यर्दन के पार लौट गए। उन्ही दिनों जब उनका एक विश्वासी लाजरूस बैथानिया में मृत्यु को प्राप्त हुआ तो ईसा ने उसे उसकी कब्र में जाकर जीवनदान दिया। यह चमत्कार देखकर कुछ लोग तो ईसा के अनुयायी हो गए पर कई लोग उनके घोर विरोधी हो गए। महायाजकों और फरीसियों ने महासभा बुलाकर कहा कि यदि ईसा इसी प्रकार चमत्कार दिखाते रहेंगे तो सभी उनमें विश्वास करने लगेंगे और उनके स्वयं के मंदिरों व राष्ट्र का सर्वनाश हो जाएगा। अतः उन लोगो ने ईसा के लिए मृत्युदंड निश्चित कर दिया। यहूदियों का पास्का पर्व निकट था। इसके छः दिन पहले ईसा बैथानिया आए और वहां से वे येरूसलेम गए जहां खजूर की डालियां लिए विशाल



जनसमूह ने उनका स्वागत किया। ईसा जानते थे कि उनका अंत निकट है। उन्होंने अपने शिष्यों को उपदेश दिए। और प्रभु से प्रार्थना की । इसके बाद वे अपने शिष्यों के साथ केद्रोन नाले के उस पार गए जहां उनके विश्वासघाती शिष्य जूडस ने छल से उन्हें पकड़वा दिया और उन्हें बांधकर प्रधानयाजक कैफ्स के पास लाया गया। यहां से ईसा के लिए यातना का एक लंबा सिलसिला प्रारंभ हुआ। कैफ्स के पास से ईसा को राज्यपाल पिलातुस के पास ले जाया गया और उसे यह बताया गया कि महान कुकर्मी है। पिलातुस ने ईसा से पूछा कि ''क्या तुम यहूदियों के राजा हो?'' ईसा ने कहा ''मेरा राज्य इस संसार का नहीं है।'' पिलातुस ने फिर पूछा ''तो तुम राजा हो?'' ईसा ने कहा ''आप ठीक ही कहते हैं। मैं राजा हूँ। मैं इसलिए जन्मा हूँ और इसलिए संसार में आया हूँ कि सत्य के विषय में साक्ष्य दूं।'' पिलातुस ने यहूदियों से कहा कि ''मैं तो उसमें कोई दोष नहीं पाता हूँ'' पर यहूदियों के कहने पर उसने ईसा को कोड़े लगाने का आदेश दिया। सैनिकों ने कांटों का मुकुट गूंथकर उनके सिर पर रखा और उनके दाहिने हाथ में सरकण्डा थमा दिया तथा उन्हे बैंगनी कपड़ा पहनाया। फिर वे उसके पास आ–आ कर कहते थे ''यहूदियों के राजा प्रणाम'' और वे उन्हे थप्पड़ मारते जाते थे। जब ईसा काँटों का मुकुट और बैगंनी कपड़ा पहने बाहर आए फिर महायाजक और प्यादे उन्हें देखते ही चिल्ला उठे– ''इसे क्रूस दीजिए, इसे क्रूस दीजिए।'' पिलातुस ने उनसे कहा कि ''इसे तुम्हीं ले जाओ और क्रूस पर चढ़ाओ। मैं तो इसमें कोई दोष नहीं पाता।'' तब यहूदियों ने उत्तर दिया 'हमारी एक संहिता है और उस संहिता के अनुसार यह प्राणदंड के योग्य है क्योंकि इसने ईश्वर का पुत्र होने का दावा किया है। यदि आप इसे रिहा करते है तो आप राजा कैसर के हितैषी नहीं है जो अपने को राजा कहता है वह कैसर का विरोध करता है। तब पिलातुस ने उनसे पूछा 'क्यों मैं तुम्हारे राजा को कूस पर चढ़ाता हूँ? महायाजकों ने उत्तर दिया ''कैसर के सिवा हमारा कोई राजा नहीं है।'' तब पिलातुस ने ईसा को क्रूस पर चढाने के लिए उनके हवाले कर दिया। वे ईसा को अपना क्रूस ढोते हुए उस स्थान पर ले गए जिसका नाम अबानी में गोलगोथा है जिसका अर्थ

है खोपड़ी की जगह। वहां ईसा को क्रूस पर चढ़ाया गया। पिलातुस ने एक दोष–पत्र भी क्रूस पर लिखवा कर लगवा दिया–ईसा नाज़री–यहूदियों का राजा। मृत्यु के पहले ईसा ने कहा – ''मैं प्यासा हूँ।'' पर लोगों ने उन्हें यथेष्ट जल भी न दिया और अतृप्त प्यास लिए हुए ही ईसा इस संसार से चले गए। अपनी मृत्यु से पहले ईसा ने कहा – ''पिता! इन्हें क्षमा कर, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहें हैं।'' दोपहर से तीसरे पहर तक पूरे प्रदेश में अंधकार छाया रहा है। प्रकृति भी इस महान मुक्तिदाता के साथ शोक मना रही थी। लगभग तीसरे पहर ईसा ने ऊँचे स्वर से पुकार कर कहा– ''पिता में अपनी आत्मा को तेरे हाथों मे सौंपता हूँ।'' और यह कहकर उन्होंने प्राण त्याग दिए।

संत मत्ती के अनुसार मंदिर का परदा बीच से फटकर दो टुकड़े हो गया, पृथ्वी कांप उठी, चट्टानें फट गईं, कब्रें खुल गईं। और लोगों को विश्वास हो गया कि ईसा निश्चय ही ईश्वर के पुत्र थे।

यह है उस दिन का इतिहास जिसे हम गुडफ्राइडे कहते हैं। इसे हम काला दिवस कहते हैं क्योंकि ईसा मानवता के लिए शहीद हो गए अतः यह एक शहीद दिवस बन गया। ईसा को हमारी सबसे बड़ी श्रद्धाजंलि यह होगी कि जिन मूल्यों के लिए वे सलीब पर चढ़ गए उन मूल्यों की हम प्राणपन से रक्षा करें। ईसा, प्रेम, अहिंसा, क्षमा, करूणा व त्याग की प्रतिमूर्ति थें। जिन आततायियों ने उन्हें निरपराध होने पर भी निर्ममतापूर्वक सूली पर चढ़ा दिया, उनके लिए उन्होंने ईश्वर से क्षमा की याचना की। मानवता के इतिहास में क्या कहीं ऐसी मिसाल मिलती है?

आप यह अवश्य जानना चाहेंगे कि गुडफ्राइडे का दिन हमारे ईसाई भाईयों द्वारा कैसे मनाया जाता है। प्रोटेस्टैंट चर्च में विशेष रात्रिकालीन प्रार्थना सभा होती है जिसमें ईसा के अंतिम वचनों पर पादरी व्याख्यात्मक उपदेश देते हैं। समूचे ईसाई समुदाय के लोग चालीस दिन तक उसी प्रकार शोक रखते हैं जिस प्रकार मुस्लिम बंधु रमजान में रोजे रखते हैं। इस काल में कोई भी शुभ उत्सव जैसे विवाह आदि प्रायः नहीं होते हैं। कैथोलिक संप्रदाय के लोग भी अपूर्व गरिमा से



पूरे चालीस दिन तक व्रत व संयम का पालन करते हैं और इस काल को ''लेंट'' कहते हैं। ''लेंट'' का काल गुडफ्राइडे से ठीक सवा महीने पहले पड़ने वाले बुधवार से प्रारंभ होता है जिसे ''एश वेडनेस्डे'' कहते हैं। गुडफ्राइडे से पांच दिन पहले पड़ने वाले रविवार को ''पाम संडे'' या ''खजूर रविवार'' कहा जाता है जो उस दिन की स्मृति में मनाया जाता है कि जिस दिन खजूर की डालियां लेकर येरूसलम में विशाल जनसमूह ने ईसा का स्वागत किया था। इस पूरे सप्ताह को ''पवित्र सप्ताह'' या ''होली वीक'' कहा जाता है। गुडफ्राईडे के एक दिन पहले पड़ने वाले गुरूवार को ''मॉन्डी थर्सडे'' या ''पवित्र गुरूवार'' कहा जाता है। इस दिन चर्च में पादरी ईसा द्वारा दिए गए अंतिम भोज का स्मरण करते हुए बारह वृद्ध लोगों के पैर धोकर उन्हें परम प्रसाद प्रदान करते हैं। गुडफ्राइडे के दिन चर्च में विशेष प्रार्थना सभा होती है। जिन चौदह पड़ावों पर अपना सलीब ढोते हुए ईसा रुके थे उन्हें ''स्टेशन ऑफ द क्रॉस'' कहा जाता है। चर्च में ऐसे चौदह स्टेशन ऑफ द क्रॉस की मूर्तियां या तस्वीरें होती हैं जिन पर रूककर प्रार्थना की जाती है और फिर ईसा के महाबलिदान एवं उनके द्वारा दिए गए उपदेशों की पुनरावृत्ति की जाती है।

हम यह प्रश्न पूछ सकते हैं कि आज के युग में गुडफ्राइडे की क्या प्रासंगिकता है? ईसा ने अपने महान बलिदान द्वारा मानवजाति को मुक्ति प्रदान की, उन्हें प्रेम और करूणा का वरदान दिया। ईश्वर के पुत्र होते हुए भी हमारे लिए उन्होंने भीषण यातनाएं सहीं और आज भी जब हम एक दूसरे से घृणा करते हैं, एक दूसरे को कष्ट देते हैं, हिंसा पर उतारू हो जाते हैं और वैमनस्य से ग्रस्त होते हैं तब हम बार–बार ईसा को सूली पर चढ़ाते हैं। वह प्रेम का, शांति का मसीहा हमारे लिए बलिदान हो गया और यदि हम फिर भी उसके महत्व को नकार दें तो उस बलिदान का क्या अर्थ रह जाएगा? अतः आइए उस महान दिव्यात्मा को भावभीनी श्रद्धाजंली अर्पित करते हुए हम प्रण करें कि हम सौहार्द, प्रेम और करूणा से आप्लावित होते हुए ईसा की शिक्षा को अपने जीवन में उतारें और उसके बलिदान को सार्थक कर दें ताकि गुडफ्राइडे का दिन हमारे लिए अमरता, प्रेम और त्याग का अमिट प्रतीक बन जाए।

# क्रिस्मस –सहस्त्राब्दी का अंतिम पर्व

वर्ष 1999 का क्रिस्मस अत्यन्त विशिष्ट है क्योंकि यह इस सहस्त्राब्दी का अंतिम क्रिस्मस है और ईसा के जन्म के 2000 वर्ष पूर्ण होने की उस अद्‌भुत घटना का साक्षी है जिसे ईसाई समुदाय के लोग इवैन्जलाइजेशन या सुसमाचार प्रचार के नाम से पुकारते हैं। विश्व भर के मसीही समाज एवं गिरिजाघरों में लगभग एक दशाब्दी से इस तिथि की बड़ी उत्कटता से प्रतीक्षा की जा रही है।

ईसा के प्रेरित शिष्यों में से चार ने ईसा के जीवन एवं चरित्र को लिपिबद्ध करने का प्रयास किया है। बाइबिल के नए विधान में हमें उनके द्वारा लिखित प्रामाणिक सामग्री भी प्राप्त होती है। ये चारों शिष्य थे–सन्त मत्ती, सन्त मारकुस, सन्त लूकस एवं सन्त योहन। ईसा के जन्म के विषय में सन्त मत्ती व सन्त लूकस ने प्रकाश डाला है। आज के लगभग 2000 वर्ष पहले यहूदिया में राजा हेरोद का शासन था। येरूसलेम में यहूदी जाति के मूल पुरूष इब्राहीम इकतालीसवीं पीढ़ी के यूसुफ की मंगनी मरियम से हुई। बाईबिल के अनुसार उन यहूदियों में मंगनी या सगाई को इतना अधिक महत्व दिया जाता था कि दोनों वाग्दत्त पति पत्नी कहलाते थे और मंगनी रद्‌द करने के लिए भी त्यागपत्र नामक कानूनी प्रक्रिया से गुजरना पड़ता था। अतः जब यूसुफ़ को मरियम के गर्भवती होने का पता चला तो यूसुफ उसे चुपके से त्यागपत्र देकर अलग हो जाने का विचार कर रहे थे पर उन्हें स्वप्न में प्रभु के दूत ने सन्देश दिया मरियम निष्कलंक है और उसका गर्भ पवित्र आत्मा से है। अतः यूसुफ मरियम को अपने घर ले आए।

उन दिनों रोमन सम्राट कैसर अगस्तस ने जनगणना का आदेश दिया था अतः सभी लोग अपने–अपने नगर जा रहे थे। यूसुफ भी अपना नाम पंजीकृत कर अपने पूर्वज दाउद के नगर बैथलेहम गया जहां मरियम को प्रसव पीड़ा होने लगी। जब यूसुफ को किसी धर्मशाला में स्थान नहीं मिला तो वे मरियम को लेकर एक गौशाला में गए जहां



मरियम ने संसार के मुक्तिदाता ईसा को जन्म दिया। उस रात अपने झुण्ड पर पहरा दे रहे चरवाहों को स्वर्गदूतों ने ईसा के जन्म का सुसमाचार दिया। चरवाहों ने बैथलेहम जाकर इस अद्‌भुत दृश्य को सबसे पहले देखा। पूर्व से तीन ज्योतिषी एक अद्‌भुत तारे को उदित होते हुए देखकर उसका अनुसरण करते रहे; वह तारा बैथलेहम आकर रूक गया। उन तीनों ज्योतिषियों ने बालक ईसा को चरनी में लेटे हुए देखा। उन्होंने इस दिव्य शिशु को सोना, लोबान व गन्धरस की भेंट चढ़ाई।

राजा हेरोद इस भविष्यवाणी से बहुत घबरा गया कि यहूदियों के राजा या मुक्तिदाता का जन्म होने वाला है अतः उसने बैथलेहम व उसके आसपास के सभी नवजात शिशुओं को मारने की आज्ञा दे दी किन्तु ''जाको राखे सांईया मार सके न कोए'' कहावत चरितार्थ करते हुए यूसुफ प्रभु के दूत के आदेश पर बैथलेहम से मिश्र चले गए और हेरोद की मृत्यु तक मिश्र में ही रहे। बाद में वे नाजरेत नगर में आए जहां ईसा के जीवन का अधिकांश समय व्यतीत हुआ।

जीवन पर्यन्त ईसा ने दीन–दुःखियों की सेवा की और उन्हें प्रेम, शान्ति, क्षमा व अहिंसा का पाठ पढ़ाया। उनके बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर समाज का प्रबुद्ध वर्ग उनसे जलने लगा और उनपर झूठे आरोप लगाकर उन्हें सूली पर चढ़वाकर मरवा डाला गया किन्तु वे तीसरे दिन पुनर्जीवित हो उठे और उन्होंने अपने प्रेरित शिष्यों को सन्देश दिया और कहा संसार के कोने–कोने में जाकर सारी सृष्टि को सुसमाचार सुनाओ क्योंकि जो विश्वास करेगा उसे मुक्ति मिलेगी।

वर्ष 2000 में ईसा के सुसमाचार संदेश को दो सहस्त्राब्दियां हो जाएंगी। पूरे विश्व में ईसा के जन्म का पर्व क्रिस्मस हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है क्रिस्मस के एक माह के पूर्व रविवार से ही इस पर्व के मनाने का सिलसिला प्रारंभ हो जाता है। इस रविवार को आगमन रविवार कहा जाता है। 6 दिसंबर को सेंट निकोलस डे कहा जाता है जो चौथी शताब्दी में जर्मनी में जन्मे। उस पवित्र सन्त की स्मृति में

मनाया जाता है जो रात्रि को चुपचाप क्रिस्मस व उपहार रख आया करता था। कालान्तर में यही सेंट निकोलस सान्ताक्लाज या फादर क्रिस्मस कहलाया जो लालरंग के वस्त्र पहने लंबी सी दाढ़ी लहराते हुए बाल, घंटियों की टनटनाहट के साथ क्रिस्मस के उपहार बांटने की परिकल्पना के साथ जुड़ गया है।

क्रिस्मस को गरीब लोग भी आनंद के साथ मनाएं, इस भावना से आगमन रविवार के बाद हर रात मसीही भजन गायकों की टोलियाँ अपने मधुर साजों के साथ गीत गाते हुए धन एकत्र करने के लिए निकलती हैं और समर्थ परिवारों से एकत्र किए हुए धन से क्रिस्मस के अवसर पर चर्च द्वारा गरीबों को भोजन, वस्त्रादि दान दिए जाते हैं। ये गायक ''कैरल सिंगर्स'' या भजन गायक कहलाते हैं।

दीवाली या होली के समान क्रिस्मस के अवसर पर अनेक प्रकार के पक़वान बनाए जाते हैं जिनमें केक प्रमुख है। विशेष प्रकार का क्रिस्मस केक तो एक वर्ष तक भी रखा जा सकता है। प्रचलित मान्यता के अनुसार बच्चे अपने घर के बाहर सांताक्लॉज के लिए बड़े से मौज़े (स्टॉकिंग्स) रख देते हैं और सांताक्लॉज उनमें उपहार डाल देता है। विदेशों के बाज़ारों में सांताक्लॉज के आकार के खिलौने, चॉकलेट व स्टॉकिंग्स भी मिलते हैं जो अब भारत में भी उपलब्ध होने लगे हैं। जिस तारे ने ईसा के आगमन की सूचना दी थी उसकी स्मृति में ईसाई समाज के लोग 24 दिसंबर की रात्रि से ही अपने घर की छत पर विद्युत सज्जा वाले सुंदर तारे लगाते हैं। 24 दिसंबर की अर्द्धरात्रि को चर्च में विशेष प्रार्थना सभा होती है और फिर प्रारंभ होता है पवित्र सप्ताह जिसमें सभी एक दूसरे को क्रिस्मस की बधाइयाँ देते हैं। क्रिस्मस का पर्व 2 जनवरी तक चलता है क्योंकि यह माना जाता है कि पूर्व के तीनों ज्योतिषी इस दिन पुनः अपने देश की ओर चल पड़े थे।

झांकी सजा कर गौशाला में नन्हे बालक ईसा के जन्म का दृश्य गिरजाघरों में भी दिखाया जाता है और ईसाई परिवारों में भी। चरनी में मिट्टी के छोटे–छोटे गडरिए भेड़ें, गायें, माता मरियम, पिता यूसुफ व



बालक ईसा की नन्हीं प्रतिमाएँ जन्माष्टमी का सा ही सुरम्य वातावरण उपस्थित कर देती हैं। घरों में क्रिस्मस ट्री भी सजाए जाते हैं, जिनमें परिजनों के लिए उपहार लटकाए जाते हैं।

कुल मिलाकर क्रिस्मस आस्था, आशा व उल्लास का पर्व है किन्तु आज लोग ईसा के प्रमुख संदेश को भुलाकर इस पर्व को भी उपभोक्ता संस्कृति के दूषण से दूषित कर रहे हैं। कुछ लोगों के लिए तो क्रिस्मस आगमन का मौसम केवल खाओ, पियो और मौज करो का पर्याय बन गया है। आवश्यकता है कि हम ईसा के जीवन से प्रेरणा लें कि ईसा ने अपने हत्यारों को क्षमा किया और जीवनभर प्रेम का संदेश दिया। पोप द्वारा गत तीन वर्षों के क्रिस्मस को विशेष नाम दिए गए हैं। वर्ष 1998 के क्रिस्मस को ''पवित्र आत्मा को समर्पित क्रिस्मस'', वर्ष 1999 के क्रिस्मस को ''पिता परमेश्वर'' को समर्पित क्रिस्मस नाम दिया गया है और वर्ष 2000 को ''जुबली इयर'' अथवा ईसा के जन्म की दो सहस्त्राब्दी के पर्व का वर्ष अथवा ''जयंती वर्ष'' का नाम प्रदान किया गया है। संपूर्ण विश्व नई सहस्त्राब्दी के आगमन के लिए पलकें बिछाए बैठा है।

आज पूरे विश्व में जिस तरह हिंसा का ताण्डव हो रहा है और व्यक्ति व्यक्ति के खून का प्यासा बन रहा है। ऐसे में ईसा का जीवन और उसके उपदेश अत्यंत प्रासंगिक हैं। अतः आइए हम इस शताब्दी के अंतिम क्रिस्मस को प्रेम आस्था व उमंग से मनाकर अगली सहस्त्राब्दी को ईसा के सुसमाचार यानि उसके सुंदर उपदेशों को साकार करने की सहस्त्राब्दी बनाने का मानस बनाएँ।

# क्रिस्मस – एक पर्व आस्था का

संपूर्ण विश्व में क्रिस्मस यानि 25 दिसंबर को उत्साह पूर्वक ईसा के जन्मदिवस के रूप में मनाया जाता है। आज संसार जिस काल–संवत को सबसे अधिक मान्यता देता है वह ईसा के नाम से चलने वाली ईस्वी सन् ही है। इस विषय में भी इतिहासकारों में पर्याप्त मतभेद हैं कि ईसा मसीह का जन्म वास्तव में आज से 1992 वर्ष पूर्व 25 दिसंबर को हुआ था या नहीं।

ईसा से प्रेरित शिष्यों में से चार ने उनके जीवन व चरित्र को लिपिबद्ध करने का प्रयास किया था। बाइबिल के नए विधान (न्यू टैस्टामेन्ट) में हमें उनके द्वारा लिखित प्रामाणिक सामग्री भी उपलब्ध होती है। ये चारों शिष्य थे सन्त मत्ती, सन्त मारकुस, सन्त लुकस एवं सन्त योहन। इनमें से ईसा के जन्म के विषय में सन्त मत्ती एवं सन्त लूकस ने प्रकाश डाला है। इस तथ्य को ईसा के जीवन संबंधी महत्वपूर्ण बहिर्साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। इन दोनों के अनुसार ईसा के जन्म से बहुत पहले ही उनके विषय में विविध प्रकार की भविष्यवाणियाँ की जा चुकी थीं। उस समय यहूदियों में राजा हेरोद का शासन था। रोम सम्राट कैसर अगस्तस ने जनगणना का आदेश दिया था अतः सभी लोगों को अपना नाम लिखवाने के लिए अपने पैतृक नगर जाना पड़ता था। ईसा की माता मरियम की सगाई गलीलिया के नाजरेत नामक नगर में यूसुफ के साथ हो गई थी जो मरियम के गर्भवती होने पर चिन्तातुर था। तभी उसे स्वप्न में प्रभु के दूत ने सूचित किया कि मरियम पवित्र आत्मा से गर्भवती हुई है अतः यूसुफ उसे अपने साथ ले जाए व जब मरियम के पुत्र का जन्म हो तो उसका नाम ईसा रखे जिसका अर्थ होता है मुक्तिदाता। यूसुफ दाउद का वंशज था अतः वह मरियम के साथ अपना नाम पंजीकृत कराने दाउद के पैतृक नगर बैथलेहम गया। वहां जब उन्हें किसी भी सराय में जगह नहीं मिली तो वे एक गोशाला में गए जहां मरियम ने अर्द्धरात्रि को ईसा को जन्म दिया



और कपड़ों में लपेट कर चरनी (पशुओं का चारा देने वाली नांद) में लिटा दिया। उस रात्रि यानि पहले क्रिस्मस की शुभरात्रि को अपने झुण्ड पर पहरा दे रहे चरवाहों को स्वर्गदूत ने यह आनंददायक समाचार दिया कि उनके मुक्तिदाता का जन्म बेथलेहम में हो गया है। चरवाहों ने उमंगित होकर बैथलेहम जाकर इस अद्भुत घटना को सबसे पहले देखा। परमात्मा के इस तेजस्वी पुत्र का जन्म कोई साधारण घटना नहीं थी। संपूर्ण विश्व उसके आगमन से आलोकित हो उठा। सारी दिशाएँ मानों रात्रि की निस्तब्धता में जन्मे इस अलौकिक शिशु के स्वागत के लिए आतुर हो उठीं। पूर्व से तीन ज्योतिषी एक अद्भुत तारे को उदित होते हुए देखकर उसका अनुसरण करते बैथलेहम की गोशाला में पहुँचे, जहां उन्होंने चरनी में लेटे इस दिव्य शिशु के दर्शन किए और संसार के इस नन्हे राजा को सोना, लोबान और गन्धरस की भेंट चढ़ाकर इसका अभिनंदन किया। राजा हेरोद इस भविष्यवाणी से बौखला उठा था कि यहूदियों के मुक्तिदाता का जन्म बेथलेहम में ही होने वाला है अतः उसने सभी नवजात शिशुओं को मरवाने की योजना बना डाली। तब तक यूसुफ बाल ईसा व मरियम के साथ मिस्र चले गए व हेरोद की मृत्यु तक वहीं रहे।

यह है ईसा के जन्म यानि क्रिस्मस का इतिहास। उसके बाद क्या हुआ सभी जानते हैं। सबसे पहले जो बात हमारा ध्यान आकर्षित करती है वह यह है कि ईसा ने अत्यंत साधारण स्थान में अत्यंत साधारण परिस्थितियों में जन्म लिया। ईसाई मतावलम्बियों के अनुसार वे ईश्वर के पुत्र थे उनका जन्म राजसी ठाठ–बाट में हो सकता था किन्तु उन्होंने एक गोशाला में जन्म लेकर यह सिद्ध किया कि ईश्वर को सहजता अधिक ग्राह्य है एवं सच्ची साधना के लिए भावना की आवश्यकता है न कि साधन सम्पन्नता की।

क्रिस्मस उल्लास व प्रेम का पर्व है। इस महान दाता के जन्मदिन पर संपूर्ण विश्व प्रसन्नता के आलोक में जगमगा उठता है। इस दिन गिरजाघरों में विशेष प्रार्थना सभाएं होती हैं जो मध्यरात्रि तक चलती रहती हैं। अर्द्धरात्रि के समय ठीक बारह बजे गिरजाघरों में घंटे

एक साथ बज उठते हैं, उस शांत व पवित्र रात्रि की स्मृति में जब ईसा का जन्म हुआ था। ईसाई परिवारों में बड़ा सा सितारा लगाकर रोशनी की जाती है। यह सितारा उन तीन विद्वान ज्योतिषियों द्वारा देखे गये तारे का प्रतीक होता है जो उन्होंने ईसा के जन्म के पश्चात् देखा था। पारंपरिक पकवान व मिठाइयाँ बनाई जाती हैं जिनमें क्रिस्मस केक का महत्वपूर्ण स्थान है। जैसे होली दिवाली पर इष्ट मित्रों से स्नेह मिलन किया जाता है, उसी प्रकार क्रिस्मस के पर्व पर भी लोग अपने आत्मीयों के घर जाकर उन्हें बधाई देते हैं। दिसंबर प्रारंभ होते ही क्रिस्मस के विशेष गीत क्रिस्मस कैरल्स गिटार की झंकार के साथ गाती हुई टोलियाँ रात के समय घर–घर जाकर क्रिस्मस के आने की शुभ सूचना देती हैं और हर परिवार सामर्थ्य के अनुसार इस टोली का स्वागत करते हुए क्रिस्मस के दिन गरीबों को दिए जाने वाले भोज के लिए धनराशि देता है। यह भोज गिरजाघरों द्वारा आयोजित किए जाते हैं।

क्रिस्मस पर्व पर बच्चों के लिए विशेष आकर्षण सांताक्लॉज या फादर क्रिस्मस द्वारा उनके तकियों के पास चुपचाप छोड़े गए उपहारों का होता है। सांताक्लॉज वास्तव में सेंट निकोलस से अपभ्रष्ट होकर बना नाम है जो एक उदारहृदय संत थे। इनके विषय में प्रसिद्ध था कि ये गरीब बच्चों के घर में क्रिस्मस की रात्रि को चुपचाप उपहार रख आते थे। उन्हीं की स्मृति में लाल कपड़े पहनकर बर्फ पर स्लेज में बैठकर फिसलते हुए घंटियों की झुनझुन करके आते हुए एक गदबदे बूढ़े चाचा समान व्यक्ति की परिकल्पना सांताक्लॉज के साथ जुड़ गई है। कई क्रिस्मस कार्ड सांताक्लाज के चित्रों से सुसज्जित होते हैं। 25 से 31 दिसंबर तक क्रिस्मस सप्ताह कहलाता है और इस दौरान मुलाकातों का दौर तब तक चलता रहता है जब तक कि नववर्ष का शुभागमन नहीं हो जाता और तब महाकवि टेनीसन के शब्दों में ''नए का स्वागत पुराने को अलविदा कहकर क्रिस्मस को विदाई दे दी जाती है।''

क्रिस्मस का पर्व आज हमारे सम्मुख कई प्रश्न उपस्थित करता है। ईसा प्रेम, करूणा, दया एवं शांति के अवतार थे। सलीब पर लटके



हुए पीड़ा के चरम क्षणों में जीवन के अंतिम पलों में भी उन्होंने क्षमा का अभूतपूर्व उदाहरण स्थापित करते हुए ईश्वर से अपने हत्यारों के लिए प्रार्थना करते हुए कहा था ''हे प्रभु, इन्हें क्षमा करना क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहें हैं।'' दायें गाल पर थप्पड़ मारने वाले के सामने अपना बाँया गाल आगे करने का उदाहरण देने वाले अहिंसा के चिर पुजारी ईसा को जब यह आभास हो गया कि उनके अपने उन्हें धोखे से मरवाने का षड़यन्त्र कर रहे हैं, उस समय भी उन्होंने विवेक या धैर्य नहीं खोया और अंतिम भोज के समय अपने से छोटे सभी शिष्यों के चरण विनयपूर्वक धोए। वे अपने शिष्यों से सदा यही कहते थे कि मैं अपनी शांति तुम्हें प्रदान करता हूं । उनके जीवन के ये उदाहरण हमें क्या संदेश देते हैं?

हमारे आज के जीवन में हर ओर हिंसा, मारकाट, अविश्वास व घृणा का बोलबाला है। हमारे बीच की खाईयाँ इतनी चौड़ी होती जा रही है कि लगता हैं ये खाईयाँ एक दिन समुद्र न बन जाएँ। ऐसे वातावरण में जब हर ओर शक, भय व असुरक्षा की दम घोंटू वायु हमारी सांसों को दूभर बना रही है, ऐसे में हम यदि ईसा के आदर्शों से प्रेरणा लें और उन्हें अपने जीवन में उतारने का प्रयास करें तभी हम क्रिस्मस पर्व को सही भावना से मना सकेंगे और क्रिस्मस का नाम बड़ा दिन सार्थक हो सकेगा।

# अनुराग दिवस – वेलेन्टाइन्स डे

प्रसिद्ध सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने महाकाव्य पद्मावत में लिखा है

"इन बानन अस को जो न मारा
बेध रह्या सिगरा संसारा।"

सचमुच मदन की मार ने किसे घायल नहीं किया है? ऋतु हो बसन्त, आयु हो युवा, मौसम हो खुशनुमा, मन में हों तरंगे तो यह इच्छा होनी स्वाभाविक ही है कि अपना कोई साथी हो, हमसफर हो जिसके साथ अपने भीतर आलोड़ित होते स्पन्दनों को बाँट जाए। पर कई बार मन की बात को होठों तक लाने या संप्रेषित करने में बड़ा संकोच होता है और एक माध्यम या संदेश की आवश्यकता होती है। वैलेन्टाइन्स डे इसी माध्यम के रूप में मनाया जाता है। यह दो प्रेमियों का अनुराग के अटूट बंधन में बांधने का प्रतीकात्मक दिवस है। "क्या तुम मेरी वैलेन्टाइन बनोगी? क्या तुम मेरे वैलेन्टाइन बनोगे?" का मादक प्रेम–संदेश इसी दिन कार्डों, फूलों या उपहारों के माध्यम से प्रेमी–युगल द्वारा एक दूसरे को भिजवाया जाता है। इस संदेश की स्वीकृति या अस्वीकृति ही उनके भावी प्रेम जीवन का इतिहास रचती है।

यह कौतूहल मन में उठना स्वाभाविक है कि "वैलेन्टाइन्स डे" 14 फरवरी को ही क्यों मनाया जाता है? "वैलेन्टाइन्स डे" का इतिहास इस प्रकार है– तीसरी शताब्दी में रोम के सिंहासन पर क्रूर एंव आततायी राजा क्लॉडियस आसीन था जिसकी महत्वाकांक्षा अपने साम्राज्य का सतत विस्तार करने की थी। इसके लिए उसे अपनी सेना में योग्य योद्धाओं की आवश्यकता थी। जब उसने लक्ष्य किया कि विवाहित पुरुष उसकी सेना में भर्ती होने एवं युद्ध में जाने में हिचकिचा रहे थे तो उसने एक फरमान जारी कर अपने राज्य में विवाह पर ही प्रतिबन्ध लगा दिया। यह अवस्था इटली के विवाह योग्य युवक–युवतियों के लिए अत्यन्त विचित्र एवं कष्टदायक थी। उसकी इस पीड़ा से द्रवित होकर वैलेन्टाइन्स नामक एक ईसाई पादरी ने इटली में चुपचाप विवाह करवाने



प्रारंभ कर दिए। धीरे धीरे यह पादरी इटली में "प्रेम के पुजारी" के रूप में जाना जाने लगा। उस समय ईसाई धर्म रोमन साम्राज्य का राजकीय धर्म नहीं था। जब राजा क्लॉडियस को यह ज्ञात हुआ कि कई लोगों ने फादर वैलेन्टाइन्स से प्रभावित होकर चुपचाप ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया है, उसे वैलेन्टाइन्स की बढ़ती हुई लोकप्रियता से खतरा महसूस होने लगा और उसने वैलेन्टाइन्स को बन्दी बना दिया और 14 फरवरी 210 ईस्वी को उसका सिर कटवाकर उसे मौत के घाट उतार दिया। इस प्रकार अनुराग का यह मासूम फरिश्ता हिंसा की भेंट चढ़ गया।

वर्ष पर वर्ष बीतते चले गए किन्तु वैलेन्टाइन्स की स्मृति लोक–मानस में विभिन्न कथाओं के माध्यम से जीवित रही। मध्ययुग में चर्च ने एक घोषणा–पत्र जारी करके पादरी वैलेन्टाइन्स को संत घोषित किया और इस प्रकार तीसरी शताब्दी का पादरी फादर वैलेन्टाइन्स सेन्ट वैलेन्टाइन्स के नाम से जाना जाने लगा और प्रेमियों के संरक्षक संत के रूप में प्रसिद्ध हुआ। जिस दिन उसने संसार में प्रेम के साम्राज्य को स्थापित करने के लिए अपने प्राणों की बलि चढ़ा दी उसी दिन, अर्थात 14 फरवरी को पूरे संसार में वैलेन्टाइन्स डे के नाम से मनाया जाता हैं।

"वैलेन्टाइन्स डे" के अवसर पर बाज़ारों में प्रेम के देवता क्यूपिड का हृदय और उसमें से बाहर निकलते हुए प्रेम–बाण के बड़े बड़े पोस्टर व गुब्बारे सजाए जाते हैं। यूनानी पुराण के अनुसार क्यूपिड को प्रेम का देवता माना गया है जिसके बारे में प्रसिद्ध है कि वह अंधा है और जिस ओर भी वह अपने हाथों से पुष्प–शर चला देता है वही प्रेम–बाण से बिद्ध हो जाता है। लगभग यही परिकल्पना भारतीय पुराणों में कामदेव की है जिसके पुष्प–शर ने महादेव को भी बिद्ध किया था जिसकी परिणति शिव–पार्वती विवाह में हुई थी। अमेरिका, इंग्लैंड, यूरोप एवं अब भारत में भी आर्चीज गैलरी या अन्य बड़ी–बड़ी दुकानों में लाल रंग का हृदय क्यूपिड भी बनाए जाते हैं जो इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि प्रेम अलौकिक अनुभव दो लोगों के बीच होता है और अन्ततः उनके हृदय मिलकर एकाकार हो जाते हैं । कवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी कहा है –

दोनों ओर प्रेम पलता है
सखी पतंग भी जलता है, हां, दीपक भी जलता है।

आवश्यकता है प्रेम के वास्तविक व दृढ़ होने की।

भारत में आज की युवा पीढ़ी ने जिस तरह पाश्चात्य सभ्यता को अपने जीवन में अपना लिया है, उसी के प्रभाव के कारण वह "वैलेन्टाइन्स डे" पर अपने रोमानी प्रेमोन्माद का सस्ता व हल्का प्रदर्शन करने लगी है। इस दिन को वह हृदय की आंतरिक भावनाओं के प्रतीक के रूप में न मनाकर मात्र फैशन के रूप में मनाकर अपने आधुनिक होने के दंभ की पुष्टि कर रही है। कैसेट्स, चॉकलेट, सॉफ्ट टॉय, कार्ड व उपहार देने मात्र को वह प्रेम का अंतिम कर्तव्य मान बैठी है। किन्तु प्रेम के जिस स्वरूप की रक्षा के लिए सन्त वैलेन्टाइन्स ने अपने प्राणों की आहुति दी थी वह इतना अस्थिर व वायवी न था।

किसी अच्छी प्रथा का अनुकरण करने में कोई बुराई नहीं है, किन्तु आवश्यकता है उस प्रथा के मूलाधार तक पहुँचकर उसके सार्थक तत्वों को ग्रहण व आत्मसात करने की। आज जब समूचा विश्व वैमनस्य, घृणा, अविश्वास और स्वार्थ के दलदल में धंसता चला जा रहा है और फिर से तीसरे विश्वयुद्ध की सी परिस्थितियां बनने लगी हैं, ऐसे में मैत्री, प्रेम व आत्मीयता का संदेश देने वाला यह दिवस–"वैलेन्टाइन्स डे" कितना मोहक व स्पृहणीय है।

आइए, प्रेम की इस शाश्वत भावना को अपने जीवन–साथी तक ही सीमित न रखकर मित्रों, स्वजनों एवं परिजनों तक भी प्रेषित करें और कामायनी की इस कामना को इस वैलेन्टाइन्स डे पर साकार व मूर्त रूप प्रदान करें:–

दया लो, माया लो, ममता लो आज
मधुरिमा लो अगाध विश्वास
हमारा हृदय–रत्न–निधि स्वच्छ
खुला है तुम्हारे लिए आज
खुला है तुम्हारे लिए आज



# फिर आ गया बाल विवाह का मौसम

अक्षय तृतीया जिसे राजस्थान में आखातीज कहा जाता है, वैशाख माह के शुक्ल पक्ष में आने वाला सनातन धर्मियों का प्रमुख पर्व है। पुराणों में इसकी महत्ता प्रतिपादित करते हुए बताया गया है कि इस पर्व का नाम अक्षय इसलिए है कि इस दिन किया गया होम, जप, तप, दान, स्नानादि अक्षय रहते हैं। इस दिन व्रत रखने से मानव को उसके पापों से मुक्ति मिल जाती है। वैशाख माह के शुक्ल पक्ष तक फसल कटकर किसानों के घर में आ जाती है, अतः यह भी होली और दीपावली की तरह ऋतुपर्व ही है। इस दिन जौ के दानों का विशेष महत्व होता है। श्रीमद्भावगत में कहा गया है' 'औषधिनाम हं यवः" अर्थात "फसल पकने पर जो पौधे काट लिए जाते हैं उनमें यव मेरा स्वरुप है" अतः इस दिन जौ दान करने की भी परम्परा रही है। भारत कृषि प्रधान देश है जहां अन्नदान का विशेष महत्व है क्योंकि एक ओर इसके माध्यम से पुण्य अर्जित होता है तो दूसरी ओर समाज के सर्वहारावर्ग की आवश्यकता की पूर्ति होती है जिससे एक ओर समाज का कल्याण होता है तो दूसरी ओर राष्ट्र का व्यापक हित भी साधता है। प्रचलित मान्यता है कि इस दिन जो व्यक्ति प्रातः गंगा में स्नान करके व्रत रखता है और विधिपूर्वक होम, जप, तप और दान करता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है। इस दिन लड्डू और पंखा दान करने का विशेष महत्व है। इसके अलावा लोग अपनी सामर्थ्यानुसार जल भरे घट,गेंहु, लवण, सत्तू, दही, चावल, गुड़, स्वर्ण, वस्त्रादि का भी दान करते हैं। इससे उन्हें अक्षय पुण्यफल की प्राप्ति होती है। सतयुग का आरम्भ इसी दिन से माना जाता है, अतः इसे "युगादि तृतीया"भी कहा जाता है। इसी तिथि को नर–नारायण, परशुराम व हयग्रीव का अवतार भी हुआ था अतः इस दिन उनकी जयन्ती भी मनाई जाती है। अक्षय तृतीया महान् फल देने वाली तिथि है अतः इस दिन नवीन स्थान, संस्था एंव समाज आदि का स्थान या उद्घाटन भी किया जाता है। विवाह आदि शुभ कार्य के लिए सामान्यतः पंडित से तिथि व लग्न पूछा जाता

है किन्तु आखातीज को हमारे राजस्थान में अबूझ सावा माना जाता है अर्थात वह तिथि जो देवप्रबोधिनी एकादशी (देवउठनी ग्यारस) एवं बसन्त पंचमी के समान हर मंगलकार्य के लिए अत्यन्त शुभ होती है। अतः इस दिन विवाह एवं अन्य मंगल कार्य करने की सुदीर्घ परम्परा रही है।

हमारा प्रदेश राजस्थान विचित्रताओं का संगम रहा है। यह एक विचित्र संयोग है कि बीसवीं शताब्दी का सुप्रसिद्ध बालविवाह विरोधी अधिनियम– जिसे शारदा एक्ट कहा जाता है, के बनाने वाले अजमेर के श्री हरविलास शारदा थे और आंकड़े बताते हैं कि सबसे अधिक इस कानून का उल्लंघन भी राजस्थान में ही किया जाता है। हर आखातीज को पुलिस व प्रशासन की तथाकथित मुस्तैदी व पूर्वघोषणा के बावजूद जिस तरह ट्रैक्टरों, बैलगाड़ियों, ढाणियों और गांवों में सजे–धजे नन्हें बच्चे वर–वधु के वेश में दिखाई देते हैं और कभी–कभी तो माँ बाप की गोद में सोते जागते ही फेरे लेते है, उससे हर बार शारदा एक्ट की धज्जियां उड़ती हैं। दुधमुंहे, अंगूठा चूसते बच्चे जो बोलना भी नहीं जानते हैं,उस बंधन में जकड़ दिए जाते हैं जिसके बारे में उन्हें कुछ भी बोध नहीं होता। मीडिया द्वारा हर बार इतना प्रचारित करने के बावजूद भी आखातीज आज बालविवाह दिवस का पर्याय बन गई है और प्रशासन की नाक के ठीक नीचे धड़ल्ले से हजारों शिशुओं के भविष्य के साथ हर वर्ष खिलवाड़ किया जाता है। गांव का कृषक वर्ग शारदा एक्ट को न तो समझता है और न समझना चाहता है। उनकी अपनी व्यक्तिगत समस्याएं हैं। छोटे बच्चों का सामूहिक विवाह करने पर वे बड़े खर्च से बच जाते हैं और बड़े होने पर उनके बच्चों के लिए योग्य पति या पत्नी मिलने की भी समस्या हो जाती है। आखातीज पर प्रायः एक परिवार में दो–तीन भाईयों के पांच–छह बच्चों का सामूहिक विवाह किया जाता है ताकि बारात व अतिथितियों पर होने वाले खर्च में कटौती की जा सके। सामान्यतः वैशाख में आखातीज तक फसल कट जाती है अतः इस समय किसान के पास पूरे वर्ष की तुलना में विवाह में व्यय करने योग्य पर्याप्त साधन होते हैं।



स्वतंत्रता के बावन वर्ष बीत जाने के पश्चात् भी गांवो व शहरों में रहने वालों की मानसिकता में उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुआ है। समाजसेवी संस्थाओं द्वारा बालविवाह का विरोध किए जाने का क्या हश्र होता है, यह भंवरी भटेरी के अनुभव से स्पष्ट है। जयपुर की बस्सी तहसील के भटेरी गांव की साथिन भंवरी ने जब अपने गांव के गुर्जर जाति के परिवार की एक वर्षीय बालिका के विवाह का विरोध किया तो उसे सामूहिक बलात्कार की यंत्रणा के साथ–साथ ही लंबी कानूनी लड़ाई की पीड़ा और सामाजिक अलगाव का दंश भी झेलना पड़ा। न न्यायपालिका ने उसका साथ दिया न सामाजिक व्यवस्था ने। यह तो तब है जब पूरे देश का महिला आन्दोलन भंवरी के साथ है और न जाने कितने धरने व रैलियां उसके समर्थन में हो चुकी हैं। हम इक्कीसवीं शताब्दी में भी उस बर्बर, आदिम मानसिकता से घिरे हैं जो बालविवाह जैसी कुरीति पर स्वीकृति की मुहर लगाती है। भंवरी के उदाहरण ने कितने ही प्रगतिशील संगठनों को मायूस कर दिया है। यह भी निर्विवाद है कि कानून बनाने से ही समस्याओं का समाधान नहीं हो जाता वरना हमारे देश का जो लिखित कानून है, उसे यदि अमली जामा पहना दिया जाए तो हम विश्व के सबसे सभ्य व मानवाधिकार संरक्षक देश घोषित होंगे। दहेज विरोधी अधिनियम न जाने कब से बना हुआ है पर आज दहेज प्रथा अधिक से अधिक बढ़ती जा रही है। इसी प्रकार बालविवाह रोकने के लिए मात्र पुलिस प्रशासन और न्यायपालिका की ही भूमिका कारगर नहीं होगी। आज आवश्यकता है जन–जागरण का शंखनाद फूंकने की। हमारे ग्रामीण बंधु इतने मूर्ख नहीं है कि उन्हें अपने हित की बात समझ में न आए। जब सरकारी अभियान जैसे पल्स पोलियो को ग्रामीण वर्ग का पूर्ण समर्थन प्राप्त है तो बाल विवाह जैसी कुरीति के विषय में वे अपनी मानसिकता न बना पाएं, यह सम्भव नहीं है। आवश्यकता है एक जन–आंदोलन छेडने की। समय–समय पर गांवों में चेतना शिविर लगाए जाएं। नुक्कड़ नाटक खेले जाएं व लगातार सघन सम्पर्क कर यदि यह स्थापित किया जाए कि बालविवाह एक सामाजिक अभिशाप है जिससे उनके बच्चों का भविष्य अंधकारमय हो जाता है,

छोटी किशोरियां असमय में ही माँ बनकर कुपोषणग्रस्त हो जाती हैं एवं उनका जीवन बोझ बन जाता है। उनके बच्चे खेलने–खाने की उम्र में विवाह के बंधन में बंधकर अपना बचपन खो बैठते हैं और समाज व देश का विकास अवरूद्ध हो जाता है तो वे अवश्य समझेंगे और बालविवाह का स्वयं विरोध करेंगे।

शिक्षा के प्रचार से भी इस कुरीति को मिटाया जा सकता है। समाज के सभी लोग यदि बीड़ा उठा लें तो हर मुश्किल आसान हो जाती है। यदि आज हम अपनी पंचायती राज व्यवस्था पर गर्व कर उसकी झांकी अमेरिका के राष्ट्रपति बिल क्लिंटन को नायला में दिखा सकते हैं तो क्यों न हम हर आखातीज पर अपने आसपास के गांवों में चेतना जागरण की आधारशिला रखकर हर सम्भावित बालविवाह के खिलाफ मानसिकता बनाकर, बाल शिक्षा को बढ़ावा देकर एक नए सूर्योदय का आह्वान करें? एक विकासशील देश में बालविवाह जैसी कुप्रथा का कायम रहना मानव अधिकारों का भीषण हनन है, जिसे समाज के जागृत नागरिकों को एक चुनौती के रुप में स्वीकार कर इसको जड़ से मिटाने के लिए कृतसंकल्प होना ही पड़ेगा और जब हम कुछ करने पर आमादा हो गए तो–

असम्भव तो कुछ भी नहीं है यदि ठान लें हम,
हम ही करेंगे नव–युग का निर्माण, यह जान लें हम।



# मदर्स डे

## सहस्त्राब्दी के प्रथम मदर्स डे पर

माँ शब्द में ही इतनी मधुरता और कोमलता होती है कि इसका उच्चारण करते ही मन अपूर्व माधुर्य और मिठास से भर उठता है। जब सारी दुनियां हमसे घृणा करती है, हम पर व्यंग्य के कोड़े बरसाती है और अविश्वास के दंश से हमें आहत करती है तब किसकी ममत्व भरी शीतल गोद में सिर रखने का मन करता है? कौन है जिसका कोमल जादुई संस्पर्श हमारे सारे संतापों को हर लेता है और हममें नई ऊर्जा और प्राणशक्ति का संचार करता है? वह हैं माँ, हमारी वात्सल्यमयी माँ। जब हम किसी को आदर और श्रद्धा प्रदान करना चाहते है तो स्वतः ही उसके आगे माँ शब्द जोड़ देते है जैसे धरती माँ, देवी माँ, रानी माँ।

दो शताब्दी पूर्व जब ब्रिटिश उपनिवेशवाद के शिकंजे से अमेरिका को मुक्ति प्राप्त हुई तो इस शिशु देश में बालकों के समान ही अत्यंत उत्साह व आशावादिता का संचार हुआ। परिणामस्वरूप कई नए–नए उत्सवों और पर्वों को मनाया जाने लगा। मदर्स डे भी एक महत्वपूर्ण उत्सव के रूप में मनाया जाने लगा और इसके लिए मई का दूसरा रविवार निर्धारित किया गया। यूरोप और अमेरिका में मई में भारत के समान प्राणलेवा गर्मी नहीं पड़ती है अपितु मौसम अत्यंत खुशनुमा होता है। हर ओर मधुमास का सा आलम होता है और प्रकृति पल्लवित एवं पुष्पित होती है ठीक वैसे ही जैसे सद्य–प्रसवा माँ नवशिशु के जन्म के समय आनंदित एवं प्रफुल्लित होती है। ईसाई समुदाय विशेषकर कैथेलिक लोग मई माह को ईसा मसीह की माँ पवित्र मरियम के माह के रूप में मानते हैं और पहली से इकत्तीस मई तक गिरजाघरों में रोज मदर मरियम के नाम से प्रार्थना समारोह आयोजित किए जाते है जिनका समापन 31 मई को मोमबत्तियों के प्रकाश में चर्च की परिक्रमा करके एवं मदर मेरी की प्रतिमा के सम्मुख अनगिनत मोमबत्तियां जलाकर किया जाता है। संभवतः मई में मदर्स डे मनाने के पीछे यह भी एक कारण रहा

हो। माँ का प्यार ही संसार में सबसे निस्वार्थ होता है। अंग्रेजी में एक कहावत है पालने में झुलाने वाला हाथ ही संसार पर शासन करता है। राजस्थानी साहित्य तो वीर माँ के गुणगान से भरा हुआ है। यह माँ ही है जिसकी शिक्षा ने पुत्र को जुझारू रणबाँकुरा बनाया हैं।

इला न देणी आपणी हालरिया हुलराय
पूत सिखाए पालणै मरण बड़ाई माँय

कवि सूर्यमल मिश्रण की वीर सतसई का यह दोहा यही संदेश देता है कि माँ पालने में झूला झूलाते ही अपने नवजात पुत्र को जननी जन्मभूमि पर मर मिटने की शिक्षा दे देती है। अतः माँ की महिमा असंदिग्ध है। एक नास्तिक सिपाही ने अपने अफसर से पूछा "सर ऐसा क्यों होता है कि युद्ध के दौरान मौत से डरते डरते मुझमें अचानक अभूतपूर्व विश्वास और शक्ति का संचार होने लगता हैं।" अफसर ने कहा "हो सकता है कोई तुम्हारे लिए प्रार्थना कर रहा हो।" "प्रार्थना और मेरे लिए?" हँसते–हँसते यह कहता हुआ वह नास्तिक सिपाही अचानक कह उठा "हां सर मेरी माँ जरूर मेरे लिए प्रार्थना करती होगी।" यह किस्सा हमें यह सोचने पर विवश कर देता है कि एक हृदयहीन व्यक्ति के लिए भी उसकी माँ उसके मन का अत्यन्त कोमल भाग होती है क्योंकि वह जन्म से बड़े होने तक अपनी माँ के मौन त्याग व अंतहीन वात्सल्य का सह साक्षी होता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने नारी का प्रमुख गुण दलित द्राक्षा की भांति स्वयं को पूर्णतः समर्पित करना माना है और हर माँ में वह गुण विद्यमान होता है।

मदर्स डे भी किसी चैनल का प्रायोजित कार्यक्रम जैसा ही लगता है। हमारे देश की युवा पीढ़ी भी पश्चिम की नकल में आज अपने भाईयों को राखी के अवसर पर पत्र लिखने के बजाए आर्चीज़ के राखी कार्ड भेजने को जैसे आधुनिक होने का पर्याय मानने लगी है वैसे ही मदर्स डे पर "हाय मॉम हैप्पी मदर्स डे" कहकर समझ लेती है कि उसने अपना संतान होने का हर कर्तव्य पूरा कर लिया। भौतिकता और उपभोक्तावाद को बढ़ावा देते हैं बाजार के ये आकर्षक लुभावने कार्ड



और इनके मकड़जाल में फंसती जा रही है हमारी युवा पीढ़ी। महंगा उपहार देकर ही क्या हम मदर्स डे मनाए? हम गहराई से सोचें कि क्या साल में माँ के नाम का एक दिन जोरशोर से डंका बजाकर बाकी बचे 364 दिन हम अपनी जननी को हाशिए पर ढकेल दें? क्यों न हर दिन ही मदर्स डे हो? और क्या हमारी माँ हमसे भौतिक उपहारों की अपेक्षा रखती है? यदि हमारे रोज के व्यवहार में अपनी माँ के प्रति स्नेह व आत्मीयता होगी तो सचमुच हमें अलग से किसी एक दिन को मदर्स डे घोषित करने की कोई आवश्यकता नहीं होगी। हमारा अंतर्मन नित्य ही पुलकित होकर यह कहेगा :

फूलों की खुशबू, तारों की ज्योति, मोती की आब सी मेरी माँ
इस स्वरति–पीड़ित ज्वालामय विश्व में प्यार के सैलाब सी मेरी माँ

# मदर्स डे– अभिनन्दन मातृशक्ति का

कवियों द्वारा नारी के जिन चार रूपों देवी, माँ, सहचरी, प्राण की परिकल्पना की गई उनमें सबसे महत्वपूर्ण रूप माँ का है। हमारे पौराणिक ग्रंथों में भी मातृशक्ति की महिमा का गान किया गया है और ब्रह्मा, विष्णु महेश की त्रयी के समन्वित तेज–पुंज के रूप में आद्याशाक्ति स्वरूपा देवी के मातृरूप को ही स्वीकारा गया है। प्रकृति ने प्राणिजीवन को माँ के रूप में सर्वश्रेष्ठ वरदान दिया है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से भी संसार की लगभग सभी भाषाओं में माँ के लिए कर्णमधुर एवं सुकोमल वर्ण 'म' का उच्चारण किया जाता है जो इस तथ्य का साक्षी है कि माँ शब्द में ही ममता, मसृणना एवं मधुरता का संस्पर्श निहित है।

बाइबिल के अनुसार संसार की सबसे पवित्र माँ माता मरियम के माह के रूप में मई के महीने को मान्यता मिली हुई है और पूरे मई मास में गिरजाघरों में मरियम या मदर मेरी के नाम पर विशेष प्रार्थना समारोह आयोजित किए जाते हैं।

माँ और शिशु के बीच का संबंध संसार में सबसे पवित्र निश्छल एवं आत्मीय होता है। माँ अपने नवजात को देखकर प्रसव की सारी पीड़ा भूल जाती है और भांति–भाति के कष्ट उठाकर अपनी संतान का पालन पोषण करती है। संसार के प्रत्येक महापुरूष की सफलता का श्रेय उसकी जननी द्वारा प्रदत्त संस्कारों को ही जाता है। निःस्वार्थ त्याग एवं निष्काम कर्तव्य का दैवी गुण ईश्वर ने केवल माँ को ही प्रदान किया है।

4 जुलाई 1774 को जब ब्रिटिश उपनिवेशवाद से मुक्ति पाकर अमेरिका ने स्वतंत्रता प्राप्त की तो इस नवनिर्मित देश में अपूर्व उत्साह एवं आशावादिता का संचार हुआ। फलतः अमेरिकावासियों ने महिला दिवस, सेंट वैलन्टाइन्स डे, फादर्स डे आदि के साथ–साथ नारी अस्मिता एवं गौरव के प्रतीक रूप में मदर्स डे को भी मनाने का निश्चय किया



और इसके लिए मई के दूसरे रविवार का दिन निर्धारित किया। आज समूचे यूरोप, कनाडा, अमेरिका व अब भारत के कुछ महानगरों में भी मदर्स डे पूरे उत्साह के साथ मनाया जाता है।

पश्चिम में मई माह में मौसम अत्यन्त खुशनुमा होता है। हर तरफ सुंदर, मोहक पुष्पों से परिवेश महकने लगता है। अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध कवि जॉन कीट्स ने अपनी प्रसिद्ध कविता 'ओड टू ए नाइटिंगेल' में मौसम के पहले गुलाब को ''मिड मेज फर्स्ट चाइल्ड'' अर्थात मध्य मई का प्रथम शिशु कहकर अभिनंदित किया है। अतः मदर्स डे ऐसी ही सुरम्य ऋतु में मनाया जाता है जो एक तरह से प्रकृति माँ के साथ अपनी जननी के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापन का उत्सव है।

मदर्स डे पर माँ को क्वीन मदर अर्थात रानी माँ की तरह सम्मानित किया जाता हैं। इस दिन उसे घर के काम से बिल्कुल मुक्त रखा जाता है। चाहे माँ कार्यशील महिला हो या गृहिणी– इस दिन उसे पूर्ण आदर प्रदान कर सुंदर–सुंदर भावाभिव्यक्तियों से परिपूर्ण कार्ड, उपहार व पुष्प प्रदान किए जाते हैं। परिवार का प्रत्येक सदस्य अपने अंतरतम् से कृतज्ञता ज्ञापन करता है। पूरे दिन उत्सव का सा वातावरण रहता है और यदि लम्बा सप्ताहान्त या कोई अवकाश हुआ तो पूरा परिवार समुद्र किनारे या किसी होटल में विशेष पार्टियों का आयोजन कर अपनी माँ को अपने उल्लास में सम्मिलित करता है। समुद्र स्नान या सूर्य स्नान के आयोजन भी सामूहिक रूप में किए जाते हैं।

इस एक दिन माँ को यह अहसास करवाया जाता है कि वह परिवार की धुरी है और मकान को घर या नीड़ की संज्ञा उसी के अथक प्रयासों से मिली है। इस एक दिन उसके परिवार उसे इस बात की पुलक प्रदान करते हैं कि ये दिन समूचा उसका है, उसके लिए है।

आज जब हमारे देश में वैलन्टाइन्स डे के अवसर पर युवापीढ़ी में अपने प्रिय पात्रों तक अपना प्रेम–संदेश पहुँचाने की होड़ लगी हुई है और कई प्रकार के कार्डों व उपहारों से बाज़ार भरा पड़ा है ऐसे में

यदि अपनी जन्मदात्री माँ के प्रति हम भी मदर्स डे पर अपनी भावनाएं प्रेषित कर सकें तो इसमें हर्ज ही क्या है?

वैश्वीकरण के इस युग में पश्चिम की अच्छी परंपराओं का अनुकरण हम जन्मदिन पर बर्थडे केक बनाकर तथा नववर्ष मनाकर करते आ रहे हैं तो मदर्स डे पर यदि हम अपनी माँ के लिए कुछ विशेष आयोजन करेंगे तो हमारे परिवार का वातावरण सुंदर होगा एवं हमारे आपसी संबंधों में भी प्रगाढ़ता व आत्मीयता का समावेश होगा।

यह आवश्यक नहीं कि हम इस दिन माँ को कोई बहुत महंगा उपहार दें या बहुत खर्चीली पार्टी का आयोजन करें। प्यार से दिया हुआ एक फूल या हाथ से बनाया गया एक कार्ड भी हमारी माँ को पुलकित व उमंगित कर सकता है।

इक्कीसवीं सदी की दहलीज में भी भारत में नारी को मात्र कागजी रूप में महिमामंडित कर आदर्शात्मक जुमले उछालने वाले किन्तु वास्तविकता में उसे हाशिए पर ढकेलने वाले पुरुष प्रधान समाज में तो आज माँ की भूमिका को उजागर करने की और भी आवश्यकता है। अतः मदर्स डे इस दिशा में एक महती भूमिका निभा सकता है। अतः आइए हम भी इस मदर्स डे पर अपनी माँ से यह कहकर उसका वंदन अभिनंदन करें –

माँ– ओ जननी मेरी– तू प्रतिमूर्ति ममता की।
सृष्टि में है कौन जिसने तेरी समता की?
सीमा नहीं है तेरी अपार क्षमता की।

मेरे चिर–कृतज्ञ में उमड़ा है ज्वार भक्ति का
अभिनंदन है आज मातृ–शक्ति का!
अभिनंदन है आज मातृ–शक्ति का।।



# मित्रता– जीवन की मुस्कान

अंग्रेजी में एक कहावत है– हमारे रिश्तदारों से अधिक अच्छे हमारे मित्र हैं क्योंकि उनका चयन हम स्वयं करते हैं, जबकि हमारे रिश्तेदार बने–बनाये होते हैं, हम उन्हें नहीं चुन सकते । सचमुच मित्रता जीवन की वह मुस्कान है जो सूर्य की किरणों के समान प्रस्फुटित होती है और मन से निराशा के घटाटोप को निकाल बाहर करती है।

आज के इस तेज भागते युग में जब संबंध महज औपचारिक संवादों और ओढी हुई मुस्कानों के पीछे छिपे कटाक्षों तक सीमित रह गए हैं, जब आत्मीयता के नाम पर दूसरों के व्यक्तित्व की धज्जियां उड़ाना आम बात हो गयी है, ऐसे में मित्रता एक ऐसा शीतल संस्पर्श है जो सारी कटुता और तीक्ष्णता के दंश को अपने जादुई प्रभाव से मिटा देती है।

पश्चिम में बीसवीं शताब्दी में भौतिकतावाद का इतना प्रबल आग्रह हो गया कि व्यक्ति आत्मकेन्द्रित होता चला गया। अपने परिवार के प्रति भी उसका जुड़ाव कम होता गया और वह एक यंत्र के समान रूखा और जड़ बनता गया। संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के बाद यह अनुभव किया गया कि एक ओर तो संचार क्रांति के कारण विश्व एक वैश्विक ग्राम"ग्लोबल विलेज" बनता जा रहा है तो दूसरी ओर आपसी संबंधो का निरंतर क्षय हो रहा है। इसी स्थिति को मद्दे नजर रखकर मदर्स डे, फादर्स डे, वैलेन्टाइन्स डे जैसे दिवस मनाये जाने लगे हैं। इसी की कड़ी में अगस्त के प्रथम रविवार को "फ्रेन्डशिप डे" या मित्रता– दिवस के रूप में निर्धारित कर दिया गया। हॉलमार्क एवं आर्चीज जैसी बड़ी–बड़ी बहुराष्ट्रीय कार्ड कंपनियों ने अपने उत्पादों की बिक्री के लिए इन सभी दिवसों को जोर–शोर से प्रचारित किया और इस अवसर के सुन्दर–सुन्दर कार्ड और उपहार निर्मित कर उनके विक्रय के लिए मित्रता दिवस का भी जोर –शोर से विज्ञापन करना प्रारंभ कर दिया। मीडिया ने भी इस अवसर को भुनाने में कोई कसर

नहीं छोड़ी है। फलस्वरूप युवापीढ़ी अपने उद्‌गारों को व्यक्त करने के लिए मित्रता–दिवस पर अपने पुराने मित्रों को कार्ड और उपहार देकर दोस्ती की मिठास का अहसास कराती है तो इसी माध्यम द्वारा कई नए मित्र भी बनाती है। ये वो युग है जहां आत्मीयता मात्र आन्तरिक नहीं होती बल्कि उसकी बाहरी, अभिव्यक्ति भी उतनी ही आवश्यकता होती है। पहले आँखों के इंगित, होठों के स्मित और मन के निश्शब्द भावों को दो मित्र समझते थे और एक गुप्त तार भीतर ही भीतर कई तारों को जोड़ देता था। यहां शब्द की सत्ता नहीं थी, केवल मौन का साम्राज्य था। पर आज युग में अपने भावों की अभिव्यक्ति करने का फैशन चल पड़ा है मित्रता दिवस पर भी युवा मित्र अपने भावों की अभिव्यक्ति, उपहारों व पार्टियों द्वारा करते हैं क्योंकि यही इस युग का युग–धर्म है। पुरानी पीढ़ी को ये रंगढंग समझ में नहीं आते और वे अपने युग का हवाला देते हुए अक्सर अपने बच्चों से कहते हुए सुनाई देते हैं ''तुम लोगों का तो चलन ही निराला है भाई!'' 'पीढ़ी भेद' या 'जनरेशन गैप' का शिकार तो आज हर परिवार ही है और दोनों ही पक्ष अक्सर गालिब के इस शेर के भाव को मन ही मन दुहराते रहते हैः–

या रब न वो समझे हैं न समझेंगे मेरी बात
दे और भी दिल उनको जो न दे मुझको जुबां और

सच पूछा जाए तो मिलावट के इस युग में यदि हमें मित्रता का शुद्ध स्वर्ण मिल जाए तो हम 'कौन बनेगा करोड़पति' की दौड़ को भी ठुकरा सकते हैं। यह मित्र ही है जो पूर्णतः निस्वार्थ होकर हमें हमारी कमजोरियों के साथ चाहते हैं और सुख दुख में हमारे साझीदार होते हैं। पत्र–मित्रों में भी कभी– कभी इतनी आत्मीयता हो जाती है कि बिना देखे ही वे एक दूसरे के हमराज हो जाते हैं। आज इंटरनेट पर ई–चैट के जरिए कई अनजाने लोग जो सुदूर देशों के वासी होते हैं, परस्पर घनिष्ठ मित्र बन जाते हैं। कविवर बिहारी ने जिसे 'बतरस' कहा था उसका आनन्द जितना अपने मित्रों के साथ आता है उतना और कहीं नहीं।



गत वर्ष मेरी प्रिय सहेली पारिवारिक उलझनों के कारण डिप्रेशन की शिकार हो गयी थी। मित्रता –दिवस के उपलक्ष्य में मैंने उसे एक सुंदर सा कार्ड छोटी सी कविता के साथ भेजा। मेरा कार्ड पाते ही उसने फोन पर जो उद्‌गार व्यक्त किया उससे मुझे भी इतना अच्छा लगा कि मेरी सहेली यदि मेरी मित्रता के आश्वासन से अपनी जिदंगी के कुछ पल अंधेरों से बाहर आ सकती है तो मित्रता–दिवस पर क्यों न अपने मित्रों के जीवन को थोड़ी उजास से भर दिया जाए? कोई कहीं हमारे लिए भी सोचता है यह अहसास ही मन में कई सुखद रंगों की सृष्टि कर देता है।

हमें यह ज्ञान अवश्य होना चाहिए कि केवल मंहगे उपहार ही मित्रता का मापदण्ड नहीं होते । एक प्यार भरी छोटी सी पाती, एक स्नेह भरी मुस्कान, फूल या एक फोन भी यदि हम यदा–कदा अपने आत्मीय मित्र तक संप्रेषित कर सकें तो आपा–धापी और स्वरति से पीड़ित इस युग में हम बहुत सी सकारात्मक भावनाओं को तरंगित कर सकेंगे जो हमारे परिवेश को स्नेह की सुगंधि से महका देगी और हमारा अन्तर्मन कह उठेगाः–

जीवन–सागर को मथने पर, अमृत–सम मिले हो तुम
कंटकाकीर्ण मरू– पथ में मित्र, सुमन– सम खिले हो तुम

# सकारात्मक सोच के सुपरिणाम

कुछ दिनों पूर्व मुझे फोन पर सूचना मिली कि मेरी डॉक्टर बहिन के पैर की हड्डी टूट गई है और डॉक्टर ने उसके पैर में प्लास्टर चढ़ाकर उसे कम से कम छः सप्ताह के विश्राम की सलाह दी है। मैं बहुत अकुला उठी क्योंकि दो दिन बाद मेरी बहिन को एक महत्वपूर्ण परीक्षा में परीक्षक के रूप में शहर से बाहर जाना था और वो इस यात्रा को लेकर खासी उत्साहित थी। मैं तुरन्त उससे मिलने उसके घर पहुँची। मैंने कल्पना की थी वो मुझे रोती हुई ही मिलेगी। पर मेरे आश्चर्य की सीमा नहीं रही जब मुझे वह उत्फुल्ल चेहरे से मुस्कराती हुई मिली। मुझे चिन्तित देखकर उसने कहा "मैं इतने दिनों में सोच रही थी कि कुछ दिनों की छुट्टी ले कर आराम कर लूं क्योंकि मै बहुत थकी हुई हूँ। देखा! भगवान ने खुद मुझे आराम दे दिया। कितना अच्छा हुआ न?" और बाद के छः सप्ताह उसने अच्छी–अच्छी पुस्तकों को पढ़ने और अपना मनप्रिय संगीत सुनने में इतनी अच्छी तरह बिताए कि हम सभी को लगने लगा कि उसकी हड्डी का टूटना अभिशाप नहीं वरन् वरदान था।

यह एक उदाहरण है सकारात्मक सोच का आमतौर पर जब भी हम किसी से मिलकर उसका हाल–चाल पूछते हैं तो वो हमेशा ही किसी न किसी अभाव का रोना रोने लगता है। कभी बढ़ती हुई महंगाई का, कभी बच्चों के बिगड़ते जाने का, कभी अपने दफ्तर का, कभी नौकरी की समस्या का तो कभी मौसम का ही। (ओह, कितनी भयंकर गर्मी पड़ रही है या हाय कितनी सर्दी है)

आज के जीवन में भाग–दौड़, आपा–धापी इतनी बढ़ गयी है कि वैसे ही जीवनयापन कठिन होता जा रहा है। ऐसे में यदि हम नकारात्मक सोच रखेंगें तो जीवन और भी मुश्किल हो जाएगा।

एक साध्वी ने एकबार मुझसे कहा "जब बिजली चली जाती है तो हम कितने व्याकुल हो जाते हैं और तब तक चिड़चिड़ाते रहते हैं जब तक बिजली वापिस नहीं आती। जरा सोचें उस दौरान हमने अपना



कितना खून जला लिया है। क्या हमारे ऐसा करने से बिजली आ जाएगी।" मुझे उनकी बात में सार दिखाई दिया। मिल्टन ने भी अपनी एक कविता में कहा है "वे भी ईश्वर की सेवा करते है जो उसके हर आदेश का पालन करते हैं" तो हम ये क्यों न मान लें कि हर छोटी बड़ी विपत्ति ईश्वर का आदेश ही है। ईश्वर हमें जीवन के विभिन्न स्वादों को चखाने के लिए कभी सुख देता है तो कभी दुःख। हम स्थितप्रज्ञ तो नहीं हो सकते पर थोड़ा सा सकारात्मक चिंतन तो कर ही सकते है। शेक्सपियर ने कहा है "अभावों का फल मधुर होता है।"

राष्ट्रीय सेवा योजना के एक शिविर में मैं दस दिन तक अपने कॉलेज की कुछ छात्राओं के साथ एक अभावग्रस्त गाँव मे रही । एक रात मैंने देखा कि एक संपन्न घर की मेरी छात्रा को नींद नहीं आ रही है और वो अपने कमरे में इधर से उधर चक्कर लगा रही है। जब मैंने उससे इसका कारण पूछा तो उसने मुझे बताया कि उस गाँव में जो गरीबी और बदहाली उसने देखी है वो उसके जीवन के लिए एक दिल दहलाने वाला अनुभव है और उसे पहली बार ज्ञात हुआ है कि कितने लोगों के लिए दो समय का भोजन जुटा पाना भी असंभव है। सत्य के इस साक्षात्कार ने उस छात्रा के जीवन में इतना परिवर्तन कर दिया कि बाद में वो एक सामाजिक संगठन से जुड़कर दलित महिलाओं के लिए कार्य करने लगी और एक बेहतर इन्सान बनी । यदि वह छात्रा अपने अनुभव को नकारात्मक रूप में लेती तो न उसका भला होता न समाज का।

वस्तुतः मनुष्य का जीवन ही ईश्वर प्रदत्त वरदान है अतः हर समय दुखी रहना या स्वयं को कोसते रहना ईश्वर की इस अनुपम देन का निरादर करना है। यदि हम अपने पुराण उठाकर देखें तो पाएंगे कि जब ईश्वर को भी अवतार लेना पड़ा तो उसने मानव योनि को ही चुना। अतः यदि इस जीवन को हम भरपूर जियेंगे एवं अपने परिवेश से आनन्द का संग्रह करेंगे तभी हम अपने अस्तित्व के प्रति न्याय कर पाएंगें।

इस विश्व में सफलतम लोगों के जीवन का इतिहास पढ़कर हमें ज्ञात होता है कि उनकी सफलता का रहस्य उनके सकारात्मक

चिन्तन में है। आलप्स पर्वत की दुर्गम श्रेणियों को पार करते हुए जब नेपोलियन के सैनिक हताश हो गए तो नेपोलियन ने उनसे कहा "आलप्स –कहाँ है आलप्स? मुझे तो दिखाई नहीं देता।" और आनन–फानन में सेना ने उस दुर्गम मार्ग को पार कर लिया। इसलिए नेपोलियन कहा करता था कि "असभंव शब्द केवल मूर्खों के शब्दकोश में ही मिलता है।" एक अनजाने देश में पीड़ित मानवता की सेवा का संकल्प लेकर आयी मदर टेरेसा को क्या यह ज्ञात था कि उनकी "मिशनरीज ऑफ चैरिटीज" का महज बीजांकुर एक दिन विश्वव्यापी जन–आंदोलन का नंदन–वन बनकर लहलहा उठेगा। किन्तु जिस सकारात्मक सोच के साथ उन्होंने इस दिशा में पहला कदम उठाया था उसी के परिणाम स्वरूप विश्व–मंच बन गयीं।

एक परिचिता की एकमात्र सन्तान मानसिक रूप से विकलांग होने पर वह निराश नहीं हुई। उसने मानसिक रूप से विकलांग बच्चों के लिए एक प्रशिक्षण केन्द्र खोला जिससे न जाने कितने ऐसे बच्चों के जीवन की दिशा ही बदल गयी है। उसके समर्पित जीवन में नकारात्मक सोच को कहीं स्थान ही नहीं है। उसका जीवन हम सभी के लिए प्रेरणा का स्त्रोत बन गया है।

कवि सुमित्रानंदन पंत ने अपनी एक कविता "आः–धरती कितनी देती है" में सेम की फलियों के उगने से अभिभूत होकर प्रकृति के औघड़ दानी रूप की वंदना की है। हमारे पास भी हर्षित और कृतज्ञ होने के कई कारण है। दुःख के क्षणों में जब कोई अपनी आत्मीयता का संस्पर्श हमें देता है तथा सुख के पलों में हमारा साझीदार बनता है तो हमें अंदर से कितनी ऊर्जा व ऊष्मा मिलती है। तो हम क्यों हमेशा शिकायत करते रहें और जीवन के रंग को बदरंग कर दें? सकारात्मक सोच हमें जीवन के संघर्षों को और भी शक्ति के साथ सहने की प्रेरणा देती है और हम हर स्थिति में संतुलित रहना सीख जाते हैं। अतः आइए, इस इन्द्रधनुषी जीवन के हर रंग का आनन्द लेकर हम अपने जीवन को समरसता की ओर ले जाएं।



# जब आप सैर को जाएं

अच्छे स्वास्थ्य के लिए नियमित रूप से सैर पर जाना अत्यन्त लाभदायक होता है। अपनी व्यस्त जीवन– चर्या में यदि सुबह समय न मिले तो शाम को समय निकाला जा सकता है । चिकित्सकों के अनुसार प्रतिदिन प्रातःकाल तीन से पाँच किलोमीटर पैदल चलने से शरीर निरोग रहता है एवं दिन भर स्फूर्ति बनी रहती हैं क्योंकि इस समय सड़कों पर दौड़ते वाहन प्रदूषण नहीं फैलाते। प्रकृति के शांत, सौम्य रूप का भी साक्षात्कार इस समय किया जा सकता है। यूं भी हमारे पुराणों में ब्रह्म मुहूर्त को सर्वोत्तम समय माना जाता है।

किन्तु कुछ बाते ऐसी हैं जो सैर पर जाते समय ध्यान रखनी चाहिए। हम चाहे किसी के साथ भी घूमने जाएं, हमें पूरे समय मौन ही रहना चाहिए। कुछ दिनों पूर्व सुबह के समय ही वयोवृद्ध सज्जन राजस्थान के बजट पर इतनी जोर से प्रतिक्रिया व्यक्त कर रहे थे कि उनमें से एक को खांसी का जबर्दस्त दौरा पड़ा और उन्हें रास्ते में बैठना पड़ा। दो प्रौढ़ रोज सुबह सैर करते समय अपने मौहल्ले की अव्यवस्था अथवा बेटे–बहू के दुर्व्यवहार की चर्चा इतनी जोर से करते हैं कि उनकी आवाज उनसे बहुत दूर घूमने वालों के कानों में भी पड़ती है। कुछ पति–पत्नी तो लगता है अपने घरवालों की बुराईयां करने के लिए ही सुबह सैर को निकलते हैं। कभी–कभी तो वे आपस में ही जोर–शोर से झगड़ने लगते है और सैर करने वाले अन्य लोगों को ध्वनि प्रदूषण का सामना करना पड़ता हैं। कुछ लोग अपने खूंखार कुत्तों को पार्क में लाकर छोड़ देते हैं और सैर करने वालो को बरबस दौड़ने का अभ्यास करने को मजबूर होना पड़ता है।

अतः जब हम सैर को जाएं हमें इन बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए। एक जिम्मेदार नागरिक हैं अतः हमें अपनी नागरिकता का कर्तव्य निभाना चाहिए। सैर पर जाने समय हम अपनी दिनचर्या की समय–सारिणी बना सकते हैं। किसी रचनात्मक विषय पर चिन्तन कर

सकते हैं। यदि धार्मिक प्रकृति है तो नाम– स्मरण कर सकते हैं। हमारे जीवन में हमारे आसपास सुबह से शाम तक कभी ध्वनि विस्तारक यंत्रों का, कभी दूरदर्शन का, कभी वाहनों का इतना शोरगुल रहता है कि हमें सुबह भ्रमण के लिए जाते समय इससे यथासंभव बचने का प्रयास करना चाहिए। आंखों की ज्योति बनाए रखने के लिए हरी घास पर कुछ समय नंगे पैर चलना भी लाभदायक होता है। युवा लोग जॉगिंग करने या धीरे–धीरे भागकर भी अपनी ऊर्जा को बढ़ा सकते है। प्रातः काल प्रकृति भी मौन होकर अपनी सुषमा बिखरेती है। शांत स्थिर खड़े वृक्ष, पर्वत श्रेणियां, पूर्व दिशा में पल–पल परिवर्तित होता आकाश, ये सभी इतने सुरम्य दृश्य हैं कि यदि प्रातःकाल सैर को जाते समय यदि इनकी ओर ध्यान दिया जाए तो हमारा अन्तर्मन प्रफुल्लित होगा और हम अपने व्यक्तित्व का सही रूप से विकास कर पाएंगे। अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध कवि कोलरिज ने प्रकृति की अद्‌भुतता से अभिभूत होकर अपने अभिन्न मित्र वड्‌र्सवर्थ से कहा था:

O William we receive but what we give
And in our lives alone doth nature live

अर्थात हम प्रकृति से इतना कुछ पाते हैं किन्तु उसे देते क्या हैं जबकि हमारे जीवन में प्रकृति की एकछत्र सत्ता है। अतः अब, जब हम भ्रमण को जाएं तो प्रकृति के विराट अद्‌भुत रूप का साक्षात्कार करें । अपने जीवन में प्रकृति के सुंदर रंगों की छत को सहेजने का प्रयास करें। तभी हमारा भ्रमण अधिक सार्थक हो सकेगा।